साधक प्रश्नोत्तर शतक

नम्र निवेदन

आदरणीय साधक वृन्द,

यद्यपि साधकों के ज्ञान की वृद्धि विविध साधना सम्बंधी पुस्तकों आदि से अवश्य होती रहती है तथापि अधिकांश साधकों की मनोवृति प्राय: ऐसी होती है कि बहुत पढ़ने की अपेक्षा उनके मानस में उठने वाले प्रश्नों के बुद्धिसंगत उत्तर संक्षेप में ही उपलब्ध होजावें। उनकी सत्य प्रेरणा के फलस्वरूप 'साधना प्रश्नोत्तर शतक' पुस्तिका पूज्य महात्माजी के अनुग्रह से अब प्रकाशित होरही है।

जब कोई बात प्रकृति करवाना चाहती है तब वैसा ही संयोग सहज ही उपस्थित होजाता है। श्री भगवानलाल पाठक, निवासी जौरा, जिला मुरैना को प्रकृति ने धुन के पक्के साधक बनाकर हमारे मध्य भेजा है। आपने ९ जनवरी १९७३ में अनुभूति करने का सौभाग्य प्राप्त किया और तभी से लगभग प्रत्येक सप्ताह में तीन चार बार नियम से पूज्य महात्मा जी के सम्पर्क में रहते हुये साधना में बैठते रहते हैं। महात्मा जी शिवपुरी में हों तो वे शिवपुरी में और गवालियर हों तो गवालियर ही पहुँच जाते हैं। उनके नियम में अन्तर नहीं आता। गवालियर में तो मुझे प्रत्यक्ष ही उन्हें देखने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। उन्हें देखते ही मेरे मानस में यही भावना प्रबल रूप से उठने लगती है कि यदि हमारी भी वृत्ति पाठकजी की भांति ही साधना में नित्य बैठने की होजावे तो मानव जीवन की सार्थकता हमें स्पष्ट अनुभव होने लगे। साधना में बैठ लेने के उपरान्त पाठकजी नित्य ही अपने स्थान

को जाने से पूर्व पूज्य महात्माजी से कुछ समय तक सत्संग लाभ अवश्य उठाते हैं। एक दिन पूज्य महात्माजी ने कहा— "पाठक जी, जो विचार आप मुझसे सुनते हैं उन्हें कापी-पुस्तिका में लिख लिया करो। आपके पास सहज ही मनन करने योग्य विचारों की सामग्री एकत्रित हो जावेगी।" तद्नुसार गत वर्ष से पाठकजी अपने विचार विनिमय को प्रश्नोत्तर के रूप में लिखने लगे। एक शतक पूरा होने पर यह विचार आया कि इस शतक को प्रकाशित कर दिया जाय तो समस्त साधक भी लाभान्वित हो सकेंगे। क्योंकि इस शतक में प्रायः वैसे ही सब प्रश्न हैं जो साधकों के मन में उठा करते हैं।

अस्तु, 'साधक प्रश्नोत्तर शतक' पुस्तिका अब प्रकाशित होकर आपके हाथों में पहुँच रही है। आशा है, साधक महा-नुभाव, पाठकजी के द्वारा किये गये श्रम का पूरा-पूरा सदुपयोग करेंगे और साधना के मर्म को भली प्रकार हृदयंगम कर अपने जीवन को सफल बनावेंगे।

७४, तानसेन नगर, गवालियर
गुरूपूर्णिमा १९७६

निवेदिका,
उमा तिवारी

द्वितीय मुद्रण पर नम्र निवेदन

साधक प्रश्नोत्तर शतक का जिस उत्साह से स्वागत हुआ उसकी लोकप्रियता का द्योतक है। अब पुनः अपने प्रिय पाठकों की सेवा में उसका द्वितीय मुद्रण प्रस्तुत है।

गुरूपूर्णिमा
१९८२

निवेदिका,
उमा तिवारी

पूज्य महात्मा जी के साथ श्री पाठक जी

अनुक्रमणिका

(सौ प्रश्न)

२४- साधना में क्रियाओं का क्या महत्व है ?
२५- शुभ व अशुभ कर्म साधक की दृष्टि में क्या महत्व रखते है?
२६- साधक के लिये यज्ञोपवीत का क्या महत्व है ?
२७- क्या साधक की दृष्टि से परमात्मा जन्म लेता है ?
२८- क्या शक्ति जाग्रत कराई जाती है ?
२९- साधक के लिये उपवास का क्या महत्व है ?
३०- दीपावली का क्या महत्व है ?
३१- दीपावली के बाद गोवर्धन का क्या महत्व है ?
३२- "गुण गुणों में वर्त्त रहे हैं" का क्या तात्पर्य है ?
३३- ज्ञान, भक्ति और कर्म का वास्तविक सम्बन्ध क्या है ?
३४- क्या देव सोते जागते हैं ?
३५- क्या आत्मा परमात्मा में मिल सकती है ?
३६- क्या गुरू बदले जा सकते हैं ?
३७- क्या केवल साधना में बैठने से शान्ति मिल सकती है ?
३८- यह जानकारी कैसे हो कि साधक प्रगति पर है ?
३९- यह कहाँ तक ठीक है कि ब्रह्म सत्य व जगत मिथ्या है ?
४०- जीव ईश्वर का अंश होने पर भी लोग उसे विकारी क्यों कहते हैं ?
४१- क्या प्रत्येक साधक का अहंकार ही कार्य करता हैं ?
४२- देवता की परिभाषा बताइये ?
४३- देहावसान के बाद साधक की दृष्टि से जीव किस स्थिति में रहता है ?
४४- पुरुष और प्रकृति में क्या भेद है ?
४५- साधक, साधना देने का अधिकारी कब होता है ?
४६- क्या मनुष्य स्वयं ही जन्म ले सकता है ?
४७- दीक्षा लेने के बाद भी कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि साधक साधना में बैठना बंद कर देता है, ऐसा क्यों ?
४८- साधक की दृष्टि से मन्दिर के पुजारी में और साधक पुजारी में क्या अन्तर है ?

४९- कर्म करने में योगाभ्यास कैसे होता है ?
५०- माथे पर तिलक क्यों लगाते हैं ?
५१- शंकरजी पर बेलपत्र क्यों चढ़ाते हैं ?
५२- शंकरजी को पांच मुख वाले और ब्रह्माजी को चार मुख वाले क्यों कहते हैं ?
५३- पापी कौन है और धर्मात्मा कौन है ?
५४- साधु किनको कहना चाहिये ?
५५- सभी लोग साधक क्यों नहीं बन सकते ?
५६- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किन्हें कहते हैं ?
५७- क्या अपने-अपने गुण के अनुसार कर्म करते हुये मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है ?
५८- लोभ को नरक का द्वार क्यों कहते हैं ?
५९- साधना गुप्त रखना क्यों आवश्यक है ?
६०- मकर संक्रांति का क्या महत्व है ?
६१- प्रलय किस प्रकार से होती है ?
६२- प्रत्येक प्राणी का स्वाभाव भिन्न-भिन्न क्यों होता है ?
६३- साधक और गैरसाधक के मस्तिष्क में क्या अन्तर है ?
६४- क्या साधक की दृष्टि से केवल साधना की दीक्षा लेलेना पर्याप्त है ?
६५- क्या साधक नित्य शांत रह सकता हैं ?
६६- अध्यात्म किसे कहते हैं ?
६७- निष्काम कर्मयोगी में और संन्यासी में क्या अन्तर है ?
६८- ब्रह्म और माया एक ही है या पृथक् हैं ?
६९- सच्चिदानन्द के बिना जाने भी सभी लोग सच्चिदानन्द की उपासना कैसे करते हैं ?
७०- शिवरात्रि का क्या महत्व है ?
७१- प्राय: व्यक्ति समय पर नहीं सम्हल पाता, बाद में सम्हलता है ऐसा क्यों ?
७२- लोग विषम स्थिति में शक्ति को दोष क्यों देने लगते हैं ?

७३- होली का क्या महत्व है ?
७४- साधक की दृष्टि से व्यक्ति को भगवान का पद कब प्राप्त होता है ?
७५- शरीर निर्वाह की समस्त क्रियायें जैसे भूख-प्यास लगना, मल–मूत्र विसर्जन होना, अन्न पचना, रक्त बनता आदि स्वाभाविक अनुभव होती हैं, क्या प्राणशक्ति तथा अहंभाव का इन क्रियाओं में भी योग होता है ?
७६- जिन क्रियाओं में अहंभाव अपनी चलाता है और वह स्वाभाविक क्रियाओं के प्रतिकूल आचरण करता है तो क्या प्राणशक्ति का इन क्रियाओं में भी योग होता है ?
७७- साधना की अवधि में अहंभाव तो प्रत्यक्ष में काम करता अनुभव नहीं होता और शक्ति का भी कोई रूप नहीं भासता तो फिर क्रियायें आदि कौन करता है ?
७८- नवदुर्गा का पर्व आश्विन मास में होने के उपरान्त पुनः चैत्र में क्यों मनाया जाता हैं ?
७९- नवदुर्गा के चैत्र माह के पर्व के अन्त में रामनवमी (राम जन्म) क्यों मनाते हैं ?
८०- क्या केवल सात्विक वृत्ति को अपनाकर व्यक्ति मुक्ति पा सकता हैं ?
८१- अहंकार के कर्तापन का नाश हो सकता है क्या ?
८२- दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति में क्या अन्तर है ?
८३- प्राणी भगवान से कहे कि "मैं अधम हूँ, पापी हूँ" क्या ऐसा कहना उचित है ?
८४- प्राणी सेवकभाव के कार्य उत्तमता से क्यों नहीं कर पाता ?
८५- सृष्टि को चलाने वाली प्रमुख सत्ता कौन–कौनसी है ?
८६- प्राणी कर्मफल कहां से प्राप्त करता है ?
८७- हनुमान जयन्ती का क्या महत्व है ?
८८- साधक जानते हुए भी समय पर क्यों नहीं सम्हल पाता ?
८९- साधना को कुछ लोग फिसलना पथ कहते हैं, ऐसा क्यों ?

९०- अच्छे बुरे कार्यों की जानकारी कैसे होती है ?

९१- साधक की साधना कब सार्थक समझी जाय ?

९२- साधना में वेग का कम या ज्यादा होना क्या महत्व रखता है ?

९३- सूर्य ग्रहण का क्या महत्व है ?

९४- परमात्मसत्ता और प्रकृति की जानकारी के बाद और भी क्या अध्यात्म शेष रहता है ?

९५- व्यक्ति शान्त क्यो नहीं रह पाता ?

९६- साधना लेने के कुछ समय बाद किसी-किसी साधक में शिथिलता क्यों आजाती है ?

९७- गुरुदेव के समक्ष व अलग से साधना में बैठने पर साधना की क्रियाओं में अन्तर क्यों समझ में आता है ।

९८- साधक को अपने दैनिक कार्यों में किस भाव में रहकर काम करना चाहिये ?

९९- क्या पूर्व अर्जित अनुचित संस्कारों को बदला जा सकता है अथवा मैं संकल्पों से अलग रह सकता हूँ क्या ?

१००- हठयोग में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों को गुरुकृपा से अनुभूति की साधना कठिन क्यों दिखती है ?

साधक प्रश्नोत्तर शतक

१. साधना क्यों करना चाहिये ?

साधना में बैठने से नये संस्कार बनते हैं कि "मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, सभी कार्य प्रकृति के द्वारा यंत्रवत् होरहे हैं।" जितने समय तक साधना में बैठे रहते हैं हम सभी विचारों से अपने को पृथक् समझते हैं। हम विचारों में नहीं उलझते। माँ भगवती की शरण में स्पष्ट रूप से रहते हैं। यदि यह कहा जाय तो असत्य नहीं कि साधना का सारा समय रामजी के कार्यालय में व्यतीत होता है। साथ ही साधना के उपरान्त यद्यपि साधक निमित्त बनकर सब कर्म करता है फिर भी इष्ट के लिये अनुकूल या प्रतिकूल परिणाम निकलने पर सुख - दुःख से प्रभावित हो जाता है जिससे कर्तव्यपालन में शिथिलता आ जाती है। क्योंकि निमित्त बनने पर भी कर्तापन का भाव आ ही जाता है। इस कर्तापन के भाव को "मैं नहीं करता" के नये संस्कार जो साधना में बनते हैं दबा देते हैं। अतः साधक सुख-दुःख से भी ऊपर उठने लगता है। अतएव साधना में नित्य बैठना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

१. रामजी के कार्यालय में साधक का समय कैसे व्यतीत होता है ?

रामजी गुणों से परे हैं; रजोगुण, तमोगुण. सतोगुण तीनों से पृथक हैं यानी तीनों प्रकार के विचारों से पृथक हैं। रामायण में श्री तुलसीदास जी महाराज ने बताया है कि "गुनातीत सचराचर स्वामी राम उमा सब अन्तर्यामी।" अस्तु, हम साधना के समय ऐसी ही स्थिति में रहते है। अतः रामजी का अनुकरण करना या रामजी जैसी स्थिति में रहना ही रामजी के कार्यालय में रहना है।

३. साधक मुक्ति पथ पर पैर कैसे रखता है ?

साधना में बैठने से साधक के मस्तिष्क में "मैं कुछ नहीं करता हूँ" के संस्कार निर्मित होने लगते हैं। साथ ही साधक दिन भर भगवती के लिये कार्य करता है और स्वयं को निमित्त मानता है। अतः जब साधक कर्म का कर्त्ता ही नहीं है तो उसे कर्म का फल कहां से मिलेगा ? साधक ने साधना की दीक्षा लेने से पहले जो कुछ किया था उसमें भी अज्ञान से ही साधक का कर्त्तापन था। अब उसे स्पष्ट दिखने लगा कि प्रकृति कर्म की कर्तृ है, अतः वह भूतकाल के कर्मों से मुक्त है। वर्तमान के कार्यों में भी प्रकृति ही कार्य करती है, वह नही। भविष्य में भी प्रकृति ही कार्य की करने वाली है, वह नही। तो साधक भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों में होने वाले कर्मों से मुक्त है। चूंकि कर्म फल पाने को ही जन्ममरण होता है अतः साधना लेते ही साधक मुक्ति पथ पर सहज ही चलने लगता है। यह विल्कुल सत्य है।

४. क्रोध पर कैसे विजय प्राप्त की जाय ?

क्रोध हमें जभी आयेगा जब कोई हमसे अपशब्द कहे या हमारा कोई आश्रित हमारे प्रतिकूल आचरण करे । अब यदि साधक का यह विवेक जागृत होजाता है कि प्रतिकूल आचरण करने वाले व्यक्ति के संस्कार दोषी हैं, व्यक्ति नही । तो क्रोध की मात्रा तुरन्त ही कम होने लगेगी । साथ ही यह ज्ञान होना चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य के एक-एक बूँद खून में लाखों जीव होते हैं । अगर हमने क्रोध किया और उससे हमारा एक बूँद खून भी क्षीण हुआ तो समझो हमने उन लाखों जीवों को जिनसे कि हमारी रक्षा होती है उन्हीं का अहित किया है । यह विचार हमारे क्रोध को शान्त करने में सहायक हो सकता है ।

५. साधना में बैठने का अधिकारी कौन है ?

वह व्यक्ति साधना लेने का अधिकारी है जो पूर्ण रूपेण अपने को प्रभु के समर्पण करना चाहता है । जो प्रत्येक कार्य भगवती के लिये ही करने को उत्सुक हो । साथ ही सद्‌गुरू में श्रद्धा और विश्वास रखता हो ।

६. साधना रोग दूर करने में कैसे सहायता देती है ?

साधना में अनेक प्रकार के आसन प्राणायाम आदि स्वतः ही होते हैं जिनसे शरीर निरोग रहता है । साथ ही हिचकी, डकार अपानवायु को निकालती है जिससे पाचनक्रिया उत्तम बनी रहती है । प्रत्येक मनुष्य के शरीर के रक्त में दो प्रकार के जीवाणु होते हैं सफेद व लाल । सफेद रोग नाशक होते हैं व

लाल रक्त में बीमारी आदि के जीवाणु होते हैं । साधना के समय हम काम नहीं करते तब प्रकृति सहज ही सफेद जीवाणुओं को रुग्ण स्थान पर पहुँचा देती है जिससे वह बीमारी के कीड़ों को नष्ट कर देते हैं । इस प्रकार साधना द्वारा साधक अपने पुराने रोगों को दूर करने में बल प्राप्त करता है । साथ ही विटामिन्स की कमी दूर करने के हेतु औषधि लेने में भी अन्दर से प्रेरणा करता है ।

७. साधक का परिवार के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिये ?

साधक जिस परिवार में पैदा हुआ है या परिवार के जिन लोगों का पालन-पोषण कर रहा है उन सबसे ऊपर से तो दुनियां को दिखाने के लिये कहता रहे कि "यह मेरा लड़का है, यह मेरी लड़की है" पर अन्दर से यह भाव रखे कि माँ भगवती के बच्चे हैं । उन्ही का सब कुछ है । इनके अन्दर भी परमात्मसत्ता विद्यमान है । माँ भगवती ने ही मुझे इनकी सेवा करने का अवसर प्रदान किया है । अतः सबसे प्रेमपूर्वक उचित व्यवहार करे ।

८. शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती हैं ?

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में अनुकूल व प्रतिकूल स्थिति का आना अनिवार्य है । दुःख व सुख दोनों को ही माँ भगवती की देन समझना चाहिये । प्रतिकूल स्थिति में भी कोई न कोई सच्चाई अवश्य छिपी हुई है । पूर्ण शांत वही रह सकता है जिसे न शाँति चाहिये और न अशाँति । निमित्त बने हुए सेवक

की स्थिति ऐसी ही होती है कि कर्म सेवक करता है अवश्य, पर करता है स्वामी के लिये । अतः कर्म के फलस्वरूप आने वाले सुख-दुःख स्वामी के होंगे । सेवक के नहीं । अतः सेवक सुख-दुःख दोनों से परे रहेगा जिससे उसे न शांति अनुभव होगी न अशांति। वस्तुतः शांति से अभिप्राय शांति तथा अशान्ति दोनों से परे रहने से है ।

९. मानव जीवन को सार्थक बनाने का लक्ष्य व उसे प्राप्त करने के उपाय क्या हैं ?

प्रत्येक मानव को अपना जीवन सार्थक बनाने के लिये साक्षीभाव में आना जरूरी है एवं उसे प्राप्त करने के लिये प्रत्येक मानव अपने आपको पूर्ण रूप से शक्ति के समर्पण करदे, तभी वह भली प्रकार जीवनयापन भी कर सकता है तथा संसार के कार्य भी सही ढंग से कर सकेगा । जब वह यह समझ लेगा कि मैं तो कर्म का निमित्त मात्र हूँ, कर्म तो सभी माँ भगवती द्वारा यंत्रवत् हो रहे हैं तो सुख-दुख भी सदैव प्रभावहीन होते रहेंगे ।

१०. क्या विचार रोके जा सकते हैं ?

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में विचारों का आना अनिवार्य है । विचार रोके नहीं जा सकते । परन्तु साधक चाहे तो कुछ समय तक विचारों से पृथक् रह सकता है जबकि वह सोचे कि "मैं अलग हूँ, मेरे विचार मुझसे अलग हैं । विचार भी माँ भगवती के माध्यम से मेरे अन्दर आ रहे हैं व आते रहें मुझे उनसे कोई मतलब नहीं । मैं तो सिर्फ निमित्त मात्र हूँ।" इस

प्रकार विचारों में न उलझने से साधक बहुत कुछ विचारों से परे रह सकता है ।

११. व्यक्ति भगवान् कहलाने का अधिकारी कैसे बनता है?

व्यक्ति जब अपनी पारवारिक सीमा के बाहर के व्यक्तियों को अपने आत्मीयजन सदृश सहायता पहुँचाने लगता है तब लोग उसे परोपकारी कहने लगते हैं। जब व्यक्ति की परोपकार वृति की भावना और आगे बढ़ती है यानी वह अपने मोहल्ले के लोगों की सहायता करने लगता है । और फिर उसका सहायता करने का क्षेत्र ग्राम. शहर, देश तथा विश्व के प्राणियों के हित करने तक बढ़ जाता है तब लोग उस व्यक्ति को भगवान या अवतारी महापुरुष कहने लगते हैं । इस प्रकार व्यक्ति भगवान् सदृश आचरण से भगवान कहलाने लगता है ।

१२. क्या सिद्धियां साधक को बाधक होती हैं ?

सिद्धियाँ साधक को लक्ष्य से विचलित करने वाली हैं। क्योंकि साधक के चमत्कारों से लोग प्रभावित होकर उसका अति अधिक मान करने लगते हैं । लोग परमात्मा को भूलने लगते हैं और साधक की प्रतिष्ठा बढ़ाने लगते हैं । फलतः साधक लक्ष्य से विचलित होजाता है। उसका दबा हुआ अहंकार पुनः प्रबल होजाता है । अतः सिद्धियाँ साधक की प्रगति में अहंकार बढ़ाकर बाधा डाल देती हैं ।

३. षट्चक्रों का समाधि से क्या संबंध हैं ?

सुषम्ना नाड़ी रीढ़ की हड्डी के भीतर ऐसे रहती है जैसे

थर्मामीटर में पारा रहने की नली। इसके अगल बगल दो और नाड़ियां होती हैं जिन्हें इडा, पिंगला कहते हैं। इन दो नाड़ियों से संबंधित छै स्थान होते हैं जिन्हें षठ्चक्र कहते हैं। गुदा और इन्द्रिय के मध्य जो सीमन है उसके बीच के स्थान को मूलाधार कहते हैं। इन्द्रिय के ऊपर के स्थान को स्वाधिष्ठान कहते हैं। नाभि के स्थान को मणिपूर कहते हैं। हृदय के स्थान को अनाहद कहते हैं। कण्ठ के गड्ढे के स्थान को विशुद्ध कहते हैं और भ्रकुटी के मध्य के भाग के स्थान को आज्ञा चक्र कहते है। सुषम्ना नाड़ी में से प्राणशक्ति जब मस्तिष्क में चढ़ती है और जितनी देर वहां स्थिर रहती है उतनी देर की स्थिति को समाधि कहते हैं। प्राणशक्ति छै चक्रों में से ही मस्तिष्क में पहुँचती है। अतः समाधि की दृष्टि से इन्हें अधिक महत्व दिया जाता है।

१४. साधक का अहंकार कार्य कैसे करता है ?

साधक का अहंकार तीन प्रकार से काम करता है। जब किसी कार्य को करने का आदेश उभरता है उस वक्त साधक का अहंकार स्वामी भाव से कार्य करता है। कार्य करते समय साधक का अहंकार सेवक भाव से कार्य करता है। जिस समय साधक साधना में बैठता है उस समय साधक का अहंकार निर्विकारी भाव से यानी साक्षी भाव से कार्य करता है तब साधक कुछ नहीं करता। जो भी कार्य होता है माँ भगवती के माध्यम से होता है। इस प्रकार से प्रत्येक साधक का अहंकार तीन प्रकार से कार्य करता है।

१५. साधक में किन मुख्य बातों का होना आवश्यक है?

प्रत्येक साधक में दो बातों का होना अत्यन्त आवश्यक है। (१) साधना में रोजाना नियमित रूप से बैठना क्योंकि तभी "मैं नहीं करता" इसके संस्कार नये बनेंगे। जब ये प्रचुर मात्रा में बन जावेंगे तब निमित्त बनके काम करने में भी जो सुख-दुःख आवेंगे उन पर वे प्रभावित होंगे जिससे साधक सुख दुःख के ऊपर उठने लगेगा। (२) दिन भर जो भी कार्य हो भगवती के लिये हो। साधना में रोजाना बैठने से प्रतिदिन साधना के प्रति निष्ठा बढ़ेगी व "मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ" के संस्कार प्रबल होंगे व दिन भर के कार्यों में यह भाव रहेगा कि कार्य भगवती के लिये होरहे हैं या भगवती की प्रेरणा से हो रहे हैं तो कार्य उत्तम होंगे।

१६. क्या प्राण आते जाते हैं ?

प्राण कभी नहीं आते जाते। प्राणशक्ति तो सबमें व्याप्त सत्ता है। हां, प्राण का विचारों से सम्बन्ध छूट जाने पर प्रायः लोग कहते हैं कि प्राण चले गये परन्तु प्राण नहीं जाते। केवल उनका विचारों से सम्बन्ध छूट जाता है। वस्तुतः विचार ही आते जाते रहते हैं जो प्राण के माध्यम से आते जाते हैं।

१७, विषम स्थिति में साधक का क्या कर्तव्य है ?

कठिनाइयां मानव को निखारती है। जीवन में प्रतिकूल स्थिति का आना भी अनिवार्य है। परन्तु ऐसी स्थिति आते ही साधक को सम्हल जाना चाहिये कि मैं तो कर्म का साक्षीमात्र हूँ, कर्म तो सभी भगवती द्वारा होरहे हैं। इस प्रतिकूल स्थिति में भी कोई अच्छाई छिपी हुई है जो मेरी समझ से बाहर है। यह समझ में आते ही साधक की प्रतिकूल स्थिति साधक को विचलित न होने देगी।

१८. ज्ञानी और अज्ञानी की स्थिति में क्या अन्तर है ?

मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, सारा कार्य प्रकृति का होरहा है यह विचारधारा साधारण ज्ञानी के मस्तिष्क की होती है। ज्ञानी की उच्च स्थिति में ज्ञानी को साक्षी भाव में आना आजाता है जिससे वह अनुकूल व प्रतिकूल स्थिति में निर्विकारी भाव में आजाता है, अतः उच्च कहा जाता है। जिनके मस्तिष्क में 'मैंपन' के संस्कार प्रचुर मात्रा में हैं और जो उसी में लिपटे हुये कई प्रकार के कष्टों को भोग रहे हैं ऐसी स्थिति अज्ञानी की कही जाती है।

१९, पाप व पुण्य की वास्तविकता क्या है ?

पाप व पुण्य अज्ञान से दिखाई देते हैं। विवेक आने पर पुण्य व पाप कुछ भी नहीं हैं। क्योंकि जब सभी कार्य मां भगवती द्वारा यंत्रवत् होरहे हैं, साधक तो केवल द्दष्टा मात्र है और कर्तापन से मुक्त है, तब वह पाप व पुण्य से प्रभावित नहीं हो सकता।

२०, नवदुर्गा व दशहरे का साधक के लिये क्या महत्व है?

नौ शक्तियों का नाम ही नवदुर्गा है। पांच ज्ञान इन्द्रियां (१) कान (२) आंख (३) नाक (४) वाणी (५) त्वचा और अन्तःकरण के चार रूप (१) मन (२) बुद्धि (३) चित्त (४) अहंकार पर नियंत्रण को ही नव दुर्गा का पर्व है। पहिले दिन कान से जो भी सुने वह सभी भगवती के लिये ही सुना जाय इस प्रकार का व्रत है। दूसरे दिन आंख से जो भो देखा जाय वह सभी शक्ति के लिए ही। तीसरे दिन नाक से जो भी

गंध ली जाय वह अच्छी हो या खराब सब शक्ति के लिये। चौथे दिन वाणी से जो भी शब्द निकलें वे सभी भगवती के समझे जावें। पाँचवे दिन त्वचा से जो भी स्पर्श हो वे सभी भगवती के समझे जावें। छठवें दिन मन में जो भी बातें आवें वे सभी शक्ति की समझी जावें। सातवें दिन बुद्धि से जो भी कार्य होवे वह भगवती का समझा जावे। आठवें दिन चित्त में जो भी विचार ठहरें वे सभी भगवती के समझे जावें। नवें दिन अपने अहंकार का पूर्ण समर्पण भगवती के लिये हो। इस प्रकार से पूरे नौ दिन में पूरे व्रतों का पालन करके दशहरे के दिन रावण रूपी अहंकार को यानी अपने अहंकार के स्वामीपन को पूर्ण रूप से समाप्त करके हमेशा के लिये जो भी कार्य होरहा हो वह भगवती का कार्य होरहा है इस प्रकार की विचारधारा बने इसलिये अपने यहां नौ दुर्गा व दशहरे का त्यौहार मनाया जाता है। दशहरा पूजा अपने यहां तीन प्रकार से होती है— (१) घोड़ों की पूजा होती है यानी इन्द्रिय रूपी घोड़ों पर काबू हो। (२) बलि की प्रथा थी जो अब नारियल से मनाई जाती है यानी अपने मान के स्वामीपन की बलि दे दो। (३) दशहरे के दिन नीलकंठ के दर्शन का भी लोग महत्व समझते हैं। नीलकंठ शंकरजी का नाम है। उन्होंने देवताओं की भलाई के लिये विष का पान किया था तथा उसे अन्दर नहीं जाने दिया कंठ में ही रक्खा। इसका तथ्य यह है कि विष तुल्य वातावरण जो 'मैंपन' का है कंठ से अन्दर न जाने दो बाहर ही रक्खो।

२१. स्वास्थ्य के ठीक रहने में साधना कैसे सहायक होती है ?

साधना के समय में साधक कुछ नहीं करता है। सारी

क्रियायें प्रकृति की होती हैं। इसलिये उस समय प्रकृति को स्वास्थ्य सुधारने का समय मिल जाता है। हाँ, साधना में बैठने वालों का आहार भी सात्विक हो तो और भी अधिक सहायता मिलती है। प्रकृति से बड़ा डाक्टर कोई है नहीं। डाक्टर भी अगर कोई दवा देता है तो वह पचती तो प्रकृति के माध्यम से ही है। डाक्टर फ्रेक्चर होने पर प्लास्टर चढ़ाता है अवश्य, पर अन्दर से हड्डी जोड़ने की क्रिया तो प्रकृति के जरिये ही होता है। अस्तु. साधना द्वारा शक्ति के माध्यम से स्वास्थ्य सुधारने में निश्चय ही सहायता मिलती है। वस्तुतः जो कुछ शरीर में टूट फूट आदि होती है उसे ठीक करने को प्रकृति ही सर्वोपरिशक्ति कही जाती है और उसे साधना में कार्य करने का पूरा अवसर मिलता है। अतः साधना द्वारा स्वास्थ्य में सुधार होना ही चाहिये।

२२. क्या साधना में श्रद्धा एवं विश्वास का भी महत्व है?

हाँ. साधक में एक तो श्री सद्गुरू के प्रति श्रद्धा दूसरे भगवती शक्ति में विश्वास का होना जरूरी है। गुरू में श्रद्धा होगी तो गुरू के उपदेशों को ध्यान से साधक सुनेगा। तदनुकूल आचरण करने की उसे प्रेरणा मिलेगी। भगवती में विश्वास होने से सफलता प्राप्त होने में आत्मबल बढ़ता है। चूंकि शक्ति की उपस्थिति साधक को प्रतिक्षण अनुभव होती रहती है, यदि साधक में श्रद्धा और विश्वास है तो शक्ति की उपस्थिति में इन्द्रियों पर अंकुश लगा रहेगा और साधक सहज ही सन्मार्ग पर चलने को प्रवृत्त होगा।

२३. शरद पूर्णिमा का क्या महत्व है ?

शरद पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा अपनी पूर्ण १६ कलाओं से

उदय होता है । इस दिन वैद्य लोग प्रयोग के लिये औषधियाँ एकत्रित करते हैं । इस दिन से छात्र ज्ञान प्राप्त करने में जुट जाते हैं । गृहस्थ निष्काम कर्म करने में अनुराग बढ़ाते हैं तथा भक्त लोग शिवजी के भक्ति के ढंग को यानी सब काम प्रकृति करती है इसे अपनाते हैं । शरद तीन अक्षरों से बना है—शः, रः, दः । शः का अर्थ है शिवजी, रः का अर्थ है प्रेम, और दः का अर्थ है उत्पन्न करना यानी शिवजी से प्रेम करना यानी उनकी भक्ति के ढंग को अपनाना । उनकी भक्ति का ढंग यही है कि सब काम प्रकृति करती है । शरद की चांदनी स्वास्थ्य वर्द्धक होने से दूध या खीर को रात्रि के १२ बजे तक चांदनी में रखते हैं, फिर भोग लगाकर सेवन करते हैं । यह दूध अमृतमय समझा जाता हैं । आध्यात्मिक दृष्टि से मन और इन्द्रियों की समाधिस्थ स्थिति को पूर्ण चन्द्र कहते हैं । प्रतिपदा से पूर्णिमा तक वैसे तो चन्द्र की १५ कलाएँ होती हैं । योगी क्रम-क्रम से विकास करता हुआ पूर्णिमा तक पहुँचता है । इस स्थिति को साधारण समाधि की स्थिति कहते हैं । पूर्ण चन्द्र की एक और कला जिसे सोहलवी कला कहते हैं उस तक विरला ही योगी पहुँच पाता है । इस स्थिति को पूर्ण समाधिस्थ स्थिति कहते हैं । वर्ष में केवल शरद की पूर्णिमासी के दिन ही चन्द्र अपनी पूरी सोलह कलाओं से युक्त होता है । अतएव शरद की पूर्णिमा को योगियों की दृष्टि से पूर्ण समाधिस्थ स्थिति का प्रतीक माना गया है । इसे ही शक्ति का सहस्रार में प्रवेश करना कहते हैं । १६ कलाएँ ही सोलह चक्र अथवा स्तर हैं—
१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपूर, ४ अनाहद, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञा, ७ बिन्दु ८ अर्द्धेन्दु, ९ निरोधिका, १० नाद, ११ महानाद

१२ शक्ति, १३ व्यापिका, १४ समानी, १५ उन्मनी और १६ सहस्त्रार (गुहाचक्र)

२४. साधना में क्रियाओं का क्या महत्व है ?

साधना में क्रियायें तीन प्रकार की होती हैं। (१) स्वास्थ्यवर्द्धक जो शरीर को ठीक करने को यानी शरीर सम्बन्धी टूट फूट को सुधारने के लिये होती है। (२) ज्ञानवर्द्धक क्रियायें जिनसे सुविचार पैदा होते हैं, सही मार्ग पर चलने की शक्ति बढ़ती है। (३) प्राणशक्ति की गतिविधियों की क्रियाऐं। वैसे साधक को साधना में क्रियायें क्या होती हैं इससे कोई मतलब नहीं। साधना में बैठने से 'मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ' के संस्कार नये बनते हैं जो साधक को सुख-दुःख से ऊपर उठाने में सहायक होते हैं। क्रियायें कब कौनसी होरही हैं इनमें भी साधक को ध्यान देने की आवश्यकता नहीं।

२५. शुभ व अशुभ कर्म साधक की दृष्टि में क्या महत्व रखते हैं ?

शुभ और अशुभ दोनों ही कर्म समाज द्वारा अज्ञान से चलाये गये हैं। वास्तव में तो शुभ और अशुभ कुछ भी नहीं हैं। अशुभ अगर न हो तो शुभ की पहिचान कैसे हो कि यह शुभ है।

जब सभी कार्य भगवती के हो रहे हैं तब गलत कार्य तो उसके द्वारा हो ही नहीं सकते। अतः उनके ऊपर अंकुश लगा रहता है। साथ ही उसे विश्वास होता है कि भगवती गलत कार्य करने की प्रेरणा दे ही नहीं सकती। अच्छे कार्य से भी

साधक प्रभावित नही होगा। उसे भी वह भगवती का ही समझ-कर करता है। इस प्रकार साधक शुभ और अशुभ दोनों में किसी से भी प्रभावित नहीं होता। उसके लिये दोनों ही एक से हैं। वह शुभ-अशुभ से परे रहता है।

२६. साधक के लिये यज्ञोपवीत का क्या महत्व है ?

यज्ञोपवीत से साधक को यह ज्ञान होता है कि मैं अलग हूँ और मेरा शरीर अलग है। यज्ञोपवीत की रचना भी शरीर से मिलती जुलती है। ९६ अंगुल का शरीर है और ९६ अंगुल के धागों से ही यज्ञोपवीत तैयार किया जाता है। रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण यानी ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों की माया से युक्त शरीर है। इसी बात की जानकारी के लिये यज्ञोपवीत को तिबला करके बटा जाता है और उसमें गठानें लगाई जाती हैं जिससे यह बोध होता है कि इन्हीं तीनों की मायाओं से प्राणी बंधा हुआ है। यज्ञोपवीत को पहने हुये नहाने धोने में बार-बार इस पर हाथ जाने से बार-बार हमें इस बात का बोध होता रहता है कि "मैं पृथक हूँ व मेरा शरीर मुझसे पृथक है।" समय आने पर जैसे यज्ञोपवीत को हम बदलकर दूसरा धारण कर लेती है वैसे ही शरीर को बदलकर दूसरा शरीर धारण करने में कठिनाई नहीं होती है।

२७. क्या साधक की दृष्टि से परमात्मा जन्म लेता है ?

परमात्मसत्ता नित्य है। उसका आना जाना नहीं होता। हाँ, जब तमोगुण अधिक बढ़ जाता है तब उसे दबाने को सत्वगुण का आधिक्य चाहिये। अतः जो सज्जन सत्वगुण प्रधान होता है और उसकी धर्मपत्नी भी यदि सत्वगुण प्रधान होती है तब सत्वगुण प्रधान जीव उस मां के गर्भ में आता है। गर्भ

में ही शक्ति उसमें ऐसे संस्कार डाल देती है जिससे उसे सहज ही साक्षीभाव में रहकर दिव्य शक्ति की अनुभूति होने लगती है साक्षीभाव में रहने से उसमें निर्विकारीपन आने लगता है जिससे उसे अनुभव होने लगता है कि समष्टि रूप में सर्वत्र व्याप्त सत्ता निर्विकारी है। उसी का वह अनुकरण करता है। दिव्यशक्ति के अनुग्रह से उसके द्वारा तमोगुण दवा दिया जाता है। वातावरण शुद्ध हो जाता है। ऐसा व्यक्ति अवतारी महा-पुरुष के नाम से विख्यात हो जाता है। इस प्रकार वस्तुतः ऐसे जीव के द्वारा परमात्मसत्ता सदृश आचरण होता है। अतः उसके जन्म को जनसाधारण यही कहता है कि परमात्मा ने जन्म लिया है। वास्तव में ऐसा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के साथ परमात्मसत्ता सदैव रहती है। उसी के आधार पर सब जीब जन्म लेते हैं। यदि वह सत्ता जन्म ले ले तो संसार के समस्त जीवों का आधार ही समाप्त हो जावेगा। अतः साधक की दृष्टि से परमात्मसत्ता व्याप्तसत्ता है। वह जन्म नहीं लेती। जन्म के साथ ही सबके साथ रहती है। उसकी ही कृपा से उसके अस्तित्व की अनुभूति साधक को होने लगती है।

२८. क्या शक्ति जाग्रत कराई जाती हैं ?

शक्ति जाग्रत नही कराईं जाती। शक्ति का तो पहिले से ही यंत्रवत् कार्य होरहा है। परन्तु, सद्गुरूओं द्वारा उसकी अनुभूति कराई जाती है तथा उसका बोध कराया जाता है। जो लोग यह कहते हैं कि सद्गुरू अगर नाराज होगये तो शक्ति लोप हो जायेगी यह बिलकुल असत्य है। इसका अर्थ केवल यही है कि ऐसे अशोभनीय कार्य जिनसे गुरुओं को नाराज होना पड़े उनसे बचने की भावना साधक में बनी रहे।

२६. साधक के लिये उपवास का क्या महत्व है ?

उपवास का अर्थ है प्रभु के पास रहना । उप माने पास में और वास माने रहना । साधक तो हमेशा ही प्रभु के पास हर समय रहता है तथा उसका आहार विहार भी नियमित होता है । उसे किसी विशेष तिथि को वगैर कुछ खाये रहकर उपवास करने की कोई आवश्यकता ही नही होती । साधक अगर वगैर कुछ खाये रहेगा तो वह साधना में ठीक से नहीं बैठ पायेगा । अधिक खाकर भी साधक साधना में ठीक से नहीं बैठ पायेगा । साधक को तो संतुलित सात्विक भोजन ही लाभप्रद है । सम्भव है, प्राचीन काल में लोगों का यह सिद्धांत रहा हो कि घरेलू कार्यों से महिलाओं को समय नहीं मिल पाता । इसलिये इस दृष्टि से कि वे मास में एक दो दिन पूरा समय प्रभु के समीप विता सकें । अतः वे किसी विशेष तिथि एकादशी आदि को भोजन न बनावें जिससे उन्हें समय की बचत हो जावे और उस समय को वे प्रभु गुणानवाद आदि में बिता सकें वाद में इस प्रथा ने दूसरा रूप धारण कर लिया होगा कि उपवास इच्छाओं की पूर्ति करने में योग देता है । ऐसा प्रचार होने से कई लोग विशेष तिथियों में भोजन नहीं करते । अन्न की जगह मूंगफलीदाने, आलू के बने पकवान व रबड़ी आदि गरिष्ट वस्तुओं का सेवन कर पेट को और खराब करते हैं जिसके कारण शरीर में कुपच आदि के रोग पैदा होजाते हैं । कई लोग बिल्कुल निराहार रहते हैं जिससे उनके दैनिक कार्य में बाधा आती है, कार्य ठीक से नहीं हो पाते । बिना कुछ खाये उनकी कार्य करने में रुचि ही नहीं होती । काम करने की शक्ति कम होजाती है । प्राणीशास्त्र के सिद्धान्तानुसार भी प्रत्येक मनुष्य के शरीर में लाखों जीव होते हैं । साधक

की दृष्टि से साधक भोजन स्वयं नहीं खाता अपने जीवों को खिलाता है । यदि भोजन न किया जावे तो इन जीवों को भी खाद्य पदार्थ से वंचित होना पड़ेगा । इसलिये साधक की दृष्टि से इस तरह का फलेच्छा से उपवास करना नितान्त अनुचित है । हाँ, अनियमित जीवन से अजीर्ण होने पर स्वास्थ्य की दृष्टि से उपवास के रूप में भोजन पर नियंत्रण करना अवश्य हितकर होगा । वस्तुतः भक्ति का उपवास से कोई संबंध नहीं है ।

३०. दीपावली का क्या महत्व है ?

दीपावली के दिन घर–घर दीप जलाये जाते हैं । ये दीप दूर–दूर रखे हुये भी दूर से देखने पर ऐसा लगता है जैसे सभी दीप पास–पास एक कतार में रखे हों । इससे हमें यह जानकारी होती है अगर हम अपने आपको अपने से दूरस्थ परमात्मा के पास से देखें तो हमें सभी जीवों की एक पंक्ति ही दिखेगी । वस्तुतः पेड़ के पत्ते वृक्ष की जड़ों को देखते हुये सभी एक जड़ के आश्रित दिखाई देंगे । दीपावली को राम राज्य का दिन बताया जाता है । इससे हमें यह जानकारी होती है कि दशहरे पर अहंकार रूपी रावण को समाप्त करके यानी अपने 'मैंपन' को अर्थात् अहंकार के स्वामीपन को समाप्त करके दीपावली पर राम राज्य में सभी काम रामजी का हो रहा है यही ज्ञान रूपी प्रकाश अन्दर समा जाय ।

दीपक आधार है । दीपक के आधार पर तेल से भींगी वत्ती जलती है । ऐसे ही भक्त का भगवान आधार है । उसके प्रेम रूपी तेल में भीगी हुई बत्ती रूपी शरणागत भक्त की जीवनलीला समाप्त होती है । यह आध्यात्मिक रहस्य है ।

३१. दीपावली के बाद गोवर्धन का क्या महत्व है ?

कहते हैं कि एक बार लक्ष्मीजी गाय का रूप रखकर गायों के पास गईं और बोलीं– "तुम हमें अपनी शरण में ले लो।" गायें बोलीं कि लक्ष्मी, तुम चलायमान हो और हम जिसके पास रहते हैं उसी के पास रहकर दूध देती हैं ।' लक्ष्मी बोलीं कि "हमें भगवान् ने यही काम दिया है । इसलिये हम चंचल हैं। शरणार्थी को ठुकराया नहीं जाता । इसलिये आप हमें अपनी शरण में ले लें ।" गायों ने सलाह की कि इन्हें शरण में लेना ही ठीक है । तब उन्होंने कहा कि 'अच्छा तुम हमारे गोबर व मूत्र में निवास करो जिससे किसान गोबर व मूत्र को खेत में खाद के रूप में डाले । पैदावार अधिक उत्पन्न करें । फलतः किसान लक्ष्मी प्राप्त करेगा । इसी दृष्टि से यह गोवर्धन का त्यौहार मनाया जाता है । आध्यात्मिक दृष्टि से जब साधक दीपावली के वास्तविक रहस्य को समझकर यानी प्रभु प्रीत्यर्थ जीवनलीला व्यतीत करने लगता है तो एक दो दिन में ही उसे प्रतीत होने लगता है कि उसकी मानसिक वृत्तियां उत्तरोत्तर प्रभु प्रेम की ओर ही वृद्धि करने लगी हैं । अतः दीपावली के बाद ही इन्द्रियों की गति प्रभु की ओर बढ़ने लगी है इसके प्रतीक गोवर्धन (गो यानी इन्द्रियां और वर्द्धन यानी सत् की ओर वृद्धि) की पूजा हेतु महत्व दिया जाने लगा होगा । यही गोवर्द्धन पूजा के मनाने का आध्यात्मिक रहस्य हैं ।

३२. गुण गुणों में वर्त्त रहे हैं का क्या तात्पर्य है ?

आकाश में सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण की विचारतरंगें व्याप्त हैं । वे हवा के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में

विद्यमान सत्व, रज, तम की तरंगों से टकराती रहती हैं। व्यक्ति के सत्त्रगुण के विचार यदि सत्वगुणी विचारतरंगों से टकराते हैं तो वह सत्वगुणी कार्य करेगा और रजोगुणी विचार-तरंगों से प्रभावित होकर वह रजोगुणी कार्य करेगा और तमोगुणी विचारतरंगों से तमोगुणी कार्य करेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि कोई भी व्यक्ति स्वयं कार्य नहीं करता। वस्तुतः ये विचारतरंगें ही आपस में टकराकर व्यक्ति के माध्यम से कार्य करवाती हैं। इस क्रिया को गुण, गुणों में वर्त्त रहे हैं कहा जाता है। संक्षेप में, मानव मस्तिष्क की त्रिगुणात्मक विचारतरंगें, वाह्य आकाश की त्रिगुणात्मक तरंगों से प्रभावित होकर मानव की इन्द्रियों को कर्म करने में प्रवृत्त करती हैं। इस क्रिया को गुण गुणों में वर्त्त रहे हैं कहा जाता है

३३. ज्ञान, भक्ति और कर्म का वास्तविक सम्बंध क्या है ?

ज्ञान कहते हैं जानकारी को, भक्ति कहते हैं प्रेमभाव को और कार्य करने को कर्म कहते हैं। बिना किसी जानकारी के किसी में भक्ति भाव आना असम्भव है और बिना प्रेमभाव के उनके द्वारा बताये हुये कार्य ठीक से नहीं हो सकते। इसलिये ज्ञान, भक्ति, व कर्म के सम्बन्ध आपस में जुड़े हुये हैं, या यों कहिये कि ज्ञान, भक्ति व कर्म तीनों अलग-अलग नहीं, एक ही हैं।

३४. क्या देव सोते जागते हैं ?

देव सोते हैं और न जागते हैं। प्रत्येक मनुष्य की इन्द्रियों की शक्तियों का नाम ही देव हैं। आषाढ़ के महीने में कृषकों के

पास फसल का काम नहीं रहता तो इन्द्रियों को काम कम करना पड़ता है। तब लोग कहने लगते हैं कि देव सोगये और दीपावली के बाद कार्तिक में जब ज्यादा काम लिया जाता है तब लोग कहने लगते हैं, देव जाग गये।

३५. क्या आत्मा, परमात्मा में मिल सकती है ?

परमात्म-सत्ता सब जगह व्याप्त है और वह अविभाजित है। इसलिये आत्मा को परमात्मा में मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे सात घड़े एक साथ रखे हों तो सूर्य का प्रतिबिम्ब उन सभी में दिखाई देगा और उनमें से एक घड़े को फोड़ दो तो सूर्य का प्रतिबिम्ब उस घड़े से लुप्त हो जायेगा, यद्यपि सूर्य सर्वत्र ही व्याप्त है। इस प्रकार जिस घड़े को भी तोड़ोगे उसी में सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं दिखेगा, जबकि सूर्य अपनी जगह स्थित है, उसमें हेरफेर नहीं। ऐसे ही आत्मा सब जगह व्याप्त है उसमें हेरफेर नहीं।

३६. क्या गुरू बदले जा सकते हैं ?

गुरू नाम परमात्मा का है। परमात्मा एक है इसलिये उन्हें बदलने का कोई प्रश्न ही नहीं। मार्गदर्शक जिन्होंने हमें यथार्थ ज्ञान नहीं दिया उन्हें हम बदल सकते हैं। वे मार्ग-दर्शक जो हमें साक्षात्कार करादें, वास्तविकता का बोध करादें, वे मार्गदर्शक नहीं बदले जासकते।

३७. क्या केवल साधना में बैठने से शान्ति मिल सकती है ?

साधना में बैठने से हमें केवल साधना की अवधि तक

ही शान्ति मिल सकती है । क्योंकि, उस समय हम कुछ नहीं करते । अगर हम दिन भर के प्रत्येक कार्य में इस बात का ध्यान रखें कि हम कुछ नहीं करते, जो भी कार्यं हो रहा है सब रामजी का हो रहा है, तब हमें दिन भर शान्ति रह सकती है। हां, इसकी पुष्टि के लिये सत्संग करना भी जरूरी है । वैसे अशान्ति का आना भी जरूरी है । हां, उस समय यदि यह स्मरण हो जावे कि "हम कुछ नहीं कर रहे हैं" तो मस्तिष्क शीघ्र संतुलित हो जावेगा ।

३८. यह जानकारी कैसे हो कि साधक प्रगति पर है ?

साधना के समय में कई प्रकार के आसनों का होना, कई प्रकार के दृष्य दिखाना, साधना में ज्यादा समय तक बैठे रहना प्राणायाम वगैरह होना यह सब देखकर ही लोग प्रायः समझने लगते हैं कि साधक प्रगति पर है । परन्तु वास्तविकता यह है कि साधक के दैनिक कार्यों में आने वाली विषम परिस्थितियों के समय अथवा अशान्ति के समय जिस साधक को यह विचार शीघ्र आजावे कि "सब काम भगवती करा रही है और जो भी कार्य होरहा है उसमें अवश्य ही कोई न कोई व्यक्ति का हित छिपा हुआ है" तो साधक की अशान्ति तुरन्त शान्ति में बदल जावेगी । यह स्थिति साधक की प्रगति कहलाती है । जितना शीघ्र ऐसा स्मरण साधक को होगा उतना ही साधक प्रगति कर रहा है समझा जावेगा ।

३९. यह कहां तक ठीक है कि ब्रह्म सत्य व जगत मिथ्या है ?

ब्रह्म की सत्ता से ही जगत उत्पन्न है इसलिये दोनों एक

हैं। जैसे सूर्य की किरणें प्रकाश फैलाती हैं, अगर सूर्य न होगा तो प्रकाश कहां से आवेगा ? सूर्य को यह जानकारी नहीं कि उसकी किरणें प्रकाश फैला रही हैं। वह तो स्वयं प्रकाश है। जैसे सूर्य और सूर्य की किरणें दोनों ही सत्य हैं ऐसे ही ब्रह्म और जगत दोनों ही अपनी जगह पर सत्य हैं। ब्रह्म और जगत में केवल इतना ही अन्तर है कि ब्रह्म अखण्ड सत्ता है इसलिये उसे निर्विकारी कहते हैं और जगत परिवर्तनशील है इसलिये उसे विकारी कहते हैं। इस कारण प्रायः लोग ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है, ऐसा कहने लगते हैं।

४०. जीव ईश्वर का अंश होने पर भी लोग उसे विकारी क्यों समझते हैं ?

प्रभुसत्ता प्रत्येक जीव के अन्दर है। इसलिये जीव व ईश्वर दोनों पृथक् नहीं एक ही हैं। परन्तु लोग अपने अहंकार को ही जीव कहने लगते हैं, इससे अपनी समझ से ही वे विकारी हैं। परन्तु जिन्हें शक्ति का अनुभव होजाता है उन्हें वास्तविकता की जानकारी होजाती है। वे अपने को निर्विकारी सत्ता का ही एक अंश मानने लगते हैं।

४१. क्या प्रत्येक साधक का अहंकार ही कार्य करता हैं ?

प्रत्येक साधक के सभी कार्य अहंकार द्वारा ही होते हैं। स्वामीभाव, सेवकभाव व साक्षीभाव तीनों ही तरह से प्रत्येक में अहंकार कार्य करता है। आदेश देते समय स्वामीभाव से, कार्य करते समय सेवकभाव से व साधना के समय में साक्षीभाव

से अहंकार ही काम करता है। इस प्रकार से प्रत्येक साधक के दैनिक सभी कार्य उसके अहंकार द्वारा ही होते हैं।

४२. देवता की परिभाषा बताइये ?

वास्तविक देवता तो प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति का नाम है। किन्तु आध्यात्मिक भाव से अपने यहां पर जगह-जगह मन्दिर बनाये गये हैं। उन्हें देखकर हमें इस बात की याद आती रहे कि प्रत्येक काम प्रभुसत्ता का होरहा है। इसी उद्देश्य से घर में लोग भगवान् की तस्वीरें रख लेते हैं कि घर के हर एक कार्य करने में यह ध्यान रहे कि "मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, प्रत्येक कार्य प्रभुसत्ता से हो रहा है।"

४३. देहावसान के बाद साधक की दृष्टि से जीव किस स्थिति में रहता है ?

साधक की दृष्टि से सभी जीव परमात्मसत्ता के कार्य से आये हैं। कार्य समाप्त होने पर उन्हें वापिस जाना है। लोग कहने लगते हैं कि यह मर गया। परन्तु जीव कभी नहीं मरता। वह वासनानुसार नवीन शरीर धारण कर लेता है। जैसे पुराना कपड़ा बदलकर नया कपड़ा पहन लिया जाता है, उसी तरह पुराना शरीर छोड़कर वह नया शरीर धारण करता है और अपनी पूर्व की वासनाओं से परमात्मसत्ता द्वारा कराया हुआ अभिनय फिर से करने लगता है।

४४. पुरुष और प्रकृति में क्या भेद है ?

पुरुष उसे कहते हैं जो अन्दर निवास कर रहा है। प्रकृति

कहते हैं उससे प्रभावित सत्ता को जिस सत्ता से मन, बुद्धि. चित्त अहंकार, स्वामीभाव, सेवकभाव, साक्षीभाव, आदि के स्मृतिचिन्ह निर्मित होते हैं। इस प्रकार जिस शक्ति का प्रभाव परमात्मसत्ता पर निर्भर हो उसे प्रकृति कहते हैं और प्रकृति जिसके लिये कार्य करे उसे पुरुष कहते हैं। वैसे प्रकृति और पुरुष दोनों एक ही हैं परन्तु कार्य की दृष्टि से दोनों पृथक् हैं।

४५. साधक, साधना देने का अधिकारी कब होता हैं ?

साधक, साधना देने का अधिकारी तब होता है जब उसे साधना में पैर के अँगूठे से लेकर सिर की चोटी तक शक्ति का संवेदन अनुभव हो और फिर वैसे ही सिर से लेकर पैर तक वापिस जाना अनुभव हो। वेग के समय एक हाथ दूसरे हाथ को यदि स्पर्श करे तो दूर से ही दूसरे हाथ में स्पन्दन होने लगे। इस प्रकार की क्रियायें साधक को जब होने लगेंगी तब उसे अन्दर से अपने आप इस प्रकार की इच्छा उत्पन्न होगी कि "अब, तुम साधना में श्रद्धालु भक्तों को बैठा सकते हो।"

४६. क्या मनुष्य स्वयं ही जन्म ले सकता है ?

मनुष्य स्वयं जन्म नहीं लेता। वह अपनी पूर्व की वासनाओं से प्रभावित होकर प्रकृति के माध्यम से जन्म लेता है और जन्म लेकर प्रकृति द्वारा कराया हुआ अभिनय करने लगता है।

४७. दीक्षा लेने के बाद भी कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि साधक साधना में बैठना बंद कर देता है, ऐसा क्यों ?

जो साधक दीक्षा लेते समय सच्चाई से आत्म-समर्पण नहीं

करते व फल की इच्छा से साधना में बैठते हैं वे प्रायः साधना लेने के बाद फिर साधना में नहीं बैठते । वस्तुतः फल प्रारब्ध से प्राप्त होता है, साधना से नहीं । साधना द्वारा उन्हें जब इच्छित फल प्राप्त होता है, तब वे साधना में बैठना बंद कर देते हैं । सत्य तो यह है कि जैसे–तीर्थ में जाकर किसी ने कोई फल छोड़ दिया तो वह उसे कभी नहीं खायेगा ऐसे ही अगर कोई किसी को गाय दान में देदे तो वह उसे वापिस नहीं ले सकता इसी प्रकार साधक यदि सच्चाई से निरीह होकर अपने को भगवती के समर्पण करता है तथा सद्‌गुरू में श्रद्धा व विश्वास रखता है तो उसे साधना में हमेशा बैठने में कठिनाई नहीं होती ।

४८. साधक की दृष्टि से मन्दिर के पुजारी में और साधना के पुजारी में क्या अन्तर है ?

साधक की दृष्टि से मन्दिर के पुजारी में और साधना के पुजारी में बहुत अन्तर है । साधक समझता है कि शरीर में भगवान् हैं और शरीर है उसका मन्दिर तथा वह स्वयं है मन्दिर का पुजारी । जबकि मालिकों द्वारा निर्मित मन्दिर का पुजारी मालिक द्वारा नियुक्त किया जाता है । वे द्रव्य देकर पूजा करवाते हैं किन्तु साधक स्वयं अपने को माँ भगवती के आश्रित पुजारी समझता है । उसे वास्तविकता की जानकारी होती है कि जो भी काम होरहा है सब माँ भगवती उसके माध्यम से करवा रही है ।

४९. कर्म करने में योगाभ्यास कैसे होता है ?

प्रत्येक मनुष्य दिन भर कुछ न कुछ कार्य तो करता ही

है । अगर उसे वह अपना न कहते हुये प्रकृति का काम हो रहा है ऐसा कहे तो उसका प्रातः से संध्या तक का प्रत्येक कार्य योग होगा । जैसे प्रातः सोके उठा तो प्रभु के लिये, मुंह हाथ धोया, नहाया-धोया तो प्रभु के लिये, खाना खाया तो प्रभु के लिये, दफ्तर गया तो प्रभु के लिये, और वहां से वापिस आकर घर पर जो भी काम किया वह सब प्रभु के लिये, रात को सोया तो प्रभु के लिये । इसी तरह से घर में औरतें सवेरे से शाम तक जो भी काम करती हैं वे सभी काम प्रभु का समझ-कर करें तो उन्हें ज्यादा काम होने पर जो झुंझलाहट होती है कि इतना सारा काम हमें करना पड़ता है वह झुंझलाहट नहीं होगी । प्रभु का काम होगा तो काम अच्छा होगा व काम करने में मन भी लगेगा । जैसे सबेरे सोके उठकर मुँह-हाथ धोया प्रभु के लिये, झाड़ू लगाई तो प्रभु के लिये, नहा धोकर खाना बनाने के लिये सब्जी काटी तो प्रभु के लिये, सब्जी छोंकी तो प्रभु के लिये, आटा माड़ा तो प्रभु के लिये, लोई तोड़ी तो प्रभु के लिये, रोटी बेली तो प्रभु के लिये. रोटी तवे पर डाली तो प्रभु के लिये, परोसकर के सभी सदस्यों को खिलाई तो यह समझकर कि परमात्मसत्ता इन सबके अन्दर व्याप्त है, इसलिये ये सब जो भी भोजन कर रहे हैं इनके द्वारा हम परमात्मा को ही भोजन करा रहे हैं । फिर बर्तन आदि मांजे तो प्रभु के लिये. और बाकी घर का जो भी काम बचा वह किया तो सब प्रभु के लिये और रात को सोये तो प्रभु के लिये । इसी प्रकार से दिन भर के सभी काम "प्रभु के होरहे हैं" यह समझ कर ही प्रभुभक्त साधक के द्वारा किये जावें तो सभी काम अच्छे होंगे और काम करने में मन लगेगा तथा उनके ये सभी काम योगाभ्यास ही कहलावेंगे ।

५०. माथे पर तिलक क्यों लगाते हैं ?

प्रत्येक मनुष्य की रीढ़ की हड्डी के दोनों ओर इडा और पिंगला नाड़ियाँ रहती हैं । इन दोनों के बीच में सुषम्ना नाड़ी होती है । ये तीनों नाड़ियां माथे पर जाकर मिलती हैं ये ही हमें शक्ति का बोध कराती हैं । इन्हीं के प्रतीक कई लोग माथे पर तीन खड़े तिलक लगाते हैं । और जो माथे पर खौर लगाते हैं वह खौर, झरोखा जैसी आकृति की होती है व गणेशजी के झण्डे के निशान मूषः यानी झरोखा से मिलती जुलती होती है। मूष. को संस्कृत में झरोखा कहते हैं जो शुद्ध वायु तथा प्रकाश देने का द्योतक है । वह भी शक्ति का बोध कराने से सम्बन्धित ही है । माथे पर रोली का तिलक लगाया जाता है उसका मतलब यह है कि रोली लाल रंग की होती है और हल्दी तथा चूने को मिलाने पर लाल रंग बनता है। हल्दी का पीला रंग होता है, पीला रंग जीव का है व सफेद रंग सत्वगुण का यानी परमात्मसत्ता का । जैसे हल्दी और चूना मिलकर दोनों एक हो जाते हैं, लाल होजाते हैं उसी प्रकार से जीव व परमात्मसत्ता दोनों मिलकर एक हैं । यह भाव रोली के तिलक से उत्पन्न होता है । अस्तु, परमात्मसत्ता का बोध होजावे इसी दृष्टि से रोली के तिलक को प्रतीक बताया है ।

५१. शंकरजी पर बेलपत्र क्यों चढ़ाते हैं ?

शंकरजी का मतलब है मस्तिष्क के स्वामी से। प्रत्येक जीव के तीनों प्रकार के विचार सत्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी मस्तिष्क में ही एकत्रित रहते हैं । इन विचारों द्वारा ही सारे काम होते हैं । जैसे विचार मस्तिष्क में भरे पड़े हैं समय पड़ने

पर वे ही यंत्रवत् उभरते रहते हैं। बेलपत्री में तीन पत्ते होते हैं इसलिये तीनों प्रकार के विचारों के प्रतीक अपने सम्पूर्ण विचारों को भक्त शंकरजी के समर्पण करता है। अतः बेलपत्र आत्म-समर्पण के रूप में चढ़ाने की प्रथा है।

५२. शंकरजी को पांच मुख वाले और ब्रह्माजी को चार मुख वाले क्यों कहते हैं ?

शंकरजी के पांच मुख पाँचों तत्वों के प्रतीक हैं—आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि। इन तत्वों को तत्वों में मिलाना पृथ्वी को पृथ्वी में, जल को जल में, वायु को वायु में और अग्नि को अग्नि में तथा इनकी उत्पत्ति करना व संहार करना शंकरजी का ही काम है। संहार तमोगुण से होता है और शंकरजी का तमोगुण का रूप है। ब्रह्माजी के चारों मुख चारों दिशाओं के प्रतीक हैं। ब्रह्माजी संकल्प स्वरूप हैं और चारों दिखाओं में संकल्पों का फैलाव है। संकल्प नाभि से उठते हैं इसलिये ब्रह्माजी का विष्णु की नाभि से जन्म बताया है।

५३. पापी कौन है और धर्मात्मा कौन है ?

श्रीकृष्ण भगवान् ने दुर्योधन व अर्जुन दोनों को ही पापी बताया। क्योंकि दोनों ही युद्ध में अपनी-अपनी जीत चाहते थे, अपने को निमित्त नहीं मानते थे। अतः अर्जुन को भगवान् ने बताया कि "हे अर्जुन, तुम कर्तापन से कार्य कर रहे हो इसलिये तुम पापी हो, अगर तुम कर्तापन को छोड़ दो तो तुमको पाप नहीं लगेगा। कार्य जो भी होरहा है सब परमात्मा का होरहा है। तुम तो केवल निमित्त मात्र हो।" इसी प्रकार से जो प्राणी

कर्तापन से कार्य कर रहे हैं वे पापी हैं और जो निमित्त बनकर कार्य कर रहे हैं वे धर्मात्मा हैं ।

५४. साधु किनको कहना चाहिये ?

आमतौर पर जो भेष बनाकर रहते हैं जैसे– भंगवा कपड़े पहने हों, जटा रखे हों, गले में बड़ी–बड़ी मालायें डालें हों, माथे पर तिलक लगाये हों, लोग उन्हें ही साधु कहते हैं । परन्तु, इन वस्तुओं से वास्तविकता की पहचान नहीं हो सकती । वास्तविक साधु वे हैं जिनके सभी कार्य प्रकृति पर निर्भर हों, जिन्हें हर चीज में प्रभुसत्ता दिखाई दे, और जो निमित्त बनकर कार्य कर रहे हों । ऐसे लोग चाहे जिस भेष में हों, साधु कहलाने योग्य हैं ।

५५. सभी लोग साधक क्यों नही बन सकते ?

आकाश में व्याप्त बाह्य विचारतरंगों में तामसी संस्कार सबसे अधिक हैं, राजसी उससे कम और सात्विकी सबसे कम । इनसे प्रभावित होकर प्रत्येक व्यक्ति का मस्तिष्क काम करता है । सात्विकी संस्कार त्याग सिखाता है । साधना में भी त्याग सर्वोपरि है । व्यक्ति पूर्ण रूप से आत्म-समर्पण शक्ति को करता है । अतः जिसके सात्विकी संस्कार अधिक होंगे वही साधक बनने की चेष्टा करेगा । अतएव सभी लोग साधक बनने की ओर प्रवृत नहीं होते ।

५६. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किन्हैं कहते हैं ?

बुद्धि, पराक्रम, संग्रह, सेवा इन चारों को ही क्रमशः बुद्धि

को ब्राह्मण, पराक्रम को क्षत्रिय, संग्रह को वैश्य और सेवा को शूद्र कहते हैं। शरीर को इन चारों के हिसाब से चार भागों में बाँटा है। मस्तिष्क को बुद्धि-ब्राह्मण, हाथों को पराक्रम-क्षत्रिय, पेट को संग्रह-वैश्य और पैरों को सेवा-शूद्र बताया है। जिसमें बुद्धि की मात्रा ज्यादा हो और पराक्रम, संग्रह, सेवा की मात्रा कम हो उसे ब्राह्मण कहते हैं। जिसमें सेवा की मात्रा ज्यादा हो और बुद्धि, पराक्रम, सग्रह की मात्रा कम हो उसे शूद्र कहते हैं। शूद्र यानी पैर जो अपने ऊपर पेट, हाथ, सिर तीनों का भार रखे हुये हैं। हाथ और मस्तक का भार पेट अपने ऊपर रखे हुये है। ऐसे ही क्षत्रिय यानी हाथ अपने ऊपर मस्तक यानी ब्राह्मण का भार रखे हुये है। ब्राह्मण अपनी बुद्धि के ऊपर निर्भर रहता है। क्षत्रिय अपने पराक्रम से निर्वाह करता है। वैश्य अपनी पूंजी के बल जीविका चलाता है और शूद्र इन तीनों की सेवा से निर्वाह करता है। इस प्रकार अपने अपने गुणों के कारण व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वास्तव में कहे जाते हैं।

५७. क्या अपने-अपने गुण के अनुसार कर्म करते हुये मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है ?

अगर प्राणी अपने प्रत्येक काम को जिस मालिक ने उसे बनाया है उसका काम समझकर करे तो वह अपने गुण के अनुसार ही अपने कर्म को करता हुआ सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। उसे दूसरे धर्म के बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। 'मैंपन' से कर्म करने वाला ब्राह्मण भी जब तक निमित्त बनकर कर्म नहीं करेगा तब तक सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। यदि निमित्त बनकर कार्य करेगा तो सिद्धि प्राप्त हो जावेगी।

ऐसे ही निमित्त बनकर कार्य करने वाला शूद्र भी अपने कर्म को करता हुआ सिद्धि को प्राप्त हो सकता है।

५८. लोभ को नरक का द्वार क्यों कहा है ?

लोभी मनुष्य प्रत्येक वस्तु को अपनी समझता है। ऐसे व्यक्ति में 'मैंपन' की भावना बढ़ती रहती है, और बाद में वह उग्र रूप धारण कर उसे पतन की ओर लेजाती है। अतः लोभ को नरक का द्वार बताया गया है। लोभी में 'मैंपन' की मात्रा अधिक होती है। वह विशेष आवश्यकता आने पर भी खर्च नहीं करना चाहता। परमात्मा के दिये हुये द्रव्य को अपना समझता है इसलिये वह दण्ड भोगता है।

५९. साधना गुप्त रखना क्यों आवश्यक है ?

यदि साधना का प्रदर्शन सबके सामने किया जावेगा तो साधक की लोग प्रशंसा करेंगे। प्रशंशा करने से उसे अभिमान आवेगा जो उसकी साधना की वृद्धि में बाधक होगा। हां, प्रशंसा के समय यदि साधक को यह ध्यान रहता है कि यह प्रशंसा भी माँ भगवती की प्रेरणा से होरही है और प्रशंसा माँ की ही होरही है, मेरी नहीं, तो साधक अवश्य अभिमान के वशीभूत न होगा। अस्तु, यदि साधना को गुप्त रखा जाय तो प्रशंसा से होने वाले अभिमान की वृद्धि का प्रश्न ही नहीं उठेगा।

६०. मकर संक्रान्ति का क्या महत्व है ?

मकर संक्रान्ति का हिसाब सूर्य से लिया गया है। सूर्य

इस दिन से उत्तरोत्तर बढ़ता है, उत्तरायण की ओर चलता है। लोगों में संक्रान्ति के दिन से नवीनीकरण की भावना बढ़ती है। संक्रान्ति के दिन प्रायः सभी सवेरे ब्रह्म महूर्त में स्नान करते हैं, और इस बात को भावना दृढ़ करते हैं कि आज से उनके मार्गदर्शन में उत्तरोत्तर वृद्धि हो। उनका नवीनीकरण हो। कई लोग आज के दिन दान करते हैं। दान में ऐसी वस्तुएँ देते हैं जो सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण तीनों से सम्बन्धित हों यानी वे तीनों गुणों से परे रहने का संकल्प करते हैं तथा साक्षीभाव में रहने का अभ्यास करते हैं। वस्तुतः संक्रान्ति आध्यात्मिक दृष्टि से विचारों में क्रान्ति लाने का प्रतीक है। तीनों गुणों को अपने कहने की प्रथा निर्बल होने लगे और गुण गुणों में वर्त्त रहे हैं के भाव सबल हों, इस भाव के चिन्तन मनन के लिये ही यह पर्व है।

६१. प्रलय किस प्रकार से होती है ?

अक्सर लोग कहते हैं कि ब्रह्मा की अवधि पूरी होने पर सृष्टि समाप्त हो जाता है और दूसरे ब्रह्मा का जन्म होकर नवीन सृष्टि की रचना होती है। परन्तु वास्तविकता यह है कि संकल्पों का नाम ब्रह्मा है। जब प्राणी का एक संकल्प समाप्त होता है तो उसकी प्रलय होजाती है ओर नये सकल्प उठने से सृष्टि की रचना दुबारा होने लगती है।

६२, प्रत्येक प्राणी का स्वभाव भिन्न-भिन्न क्यों होता है?

प्रत्येक प्राणी के संस्कार गर्भ की अवस्था में बनते हैं। जिस समय बालक गर्भ में रहता है उस समय वायु में जो विचारतरगें भरी पड़ी है वे तरंगें माता के माध्यम से बालक

तक पहुँचती हैं और उन्हीं के हिसाब से उसका स्वभाव बनता है । यदि तमोगुणी संस्कार ज्यादा मात्रा में होंगे तो तमोगुणी संस्कार बनेगा और रजोगुणी संस्कार होने पर रजोगुणी और सत्वगुणी होने पर सत्वगुणी स्वभाव बनेगा । इसलिये प्रत्येक प्राणी का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है ।

६३. साधक और गैर साधक के मस्तिष्क में क्या अन्तर है ?

गैर साधक व्यक्ति अपने अहंकार से स्वामीभाव द्वारा कार्य करता है । सद्ग्रन्थों के उपयोग से व सद्पुरुषों के अधिक सम्पर्क में रहने पर उसका अहंकार सेवकभाव से कार्य करेगा । परन्तु साधक की दृष्टि से प्रत्येक कार्य ही माँ भगवती का कार्य है । साथ ही उसे साक्षीभाव में भी रहना आता है, जिससे सुख-दुःख से प्रभावित होते ही वह सम्हल जाता है । यह विशेषता साधक में ही होती है गैर साधक में नहीं । साधक व गैर साधक में यही अन्तर है ।

६४. क्या साधक की दृष्टि से केवल साधना की दीक्षा लेलेना पर्याप्त है ?

साधक की दृष्टि से साधना की दीक्षा लेना ही पर्याप्त नहीं है । उसे जीवनयापन के लिये साधनामय होकर कार्य करना भी आवश्यक है । कार्य उत्तमता से हो इसलिये साधना में नित्य शक्ति की अनुभूति करते रहना भी जरूरी है । साधना के अलावा हमें अपने सभी दैनिक कार्य भी शक्ति के लिये करना चाहिये । हां, अपने दैनिक कार्य में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि 'मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ, प्रत्येक कार्य

माँ भगवती का होरहा है' ऐसा अभ्यास करने से कार्य भी उत्तमता से होंगे और अनुकूल व प्रतिकूल स्थिति में भी साधक प्रभावित न होगा । इसकी पुष्टि के लिये सद्गुरू से सम्पर्क बनाये रखना भी अच्छा है ।

६५. क्या साधक नित्य शान्त रह सकता है ?

साधक नित्य शान्त नहीं रह सकता । शान्ति व अशान्ति दोनों का आना आवश्यक है। साधक जिस समय साक्षीभाव में रहता है उस समय शान्त रहता है । बाकी समय में तो वह जीव का नाटक करता है, जिसमें उसे शान्ति व अशान्ति दोनों का सामना करना आवश्यक है । अशान्ति के समय साधक को यह स्मरण होते ही कि 'सभी कार्य भगवती के होरहे हैं, में तो केवल निमित्त मात्र हूँ, इस अशान्ति में भी अवश्य कोई न कोई हित प्रकृति ने छिपा रखा है जो हमारी समझ से बाहर है' साधक का मस्तिष्क संतुलित हो जावेगा ।

६६. आध्यात्म किसे कहते हैं ?

प्रत्येक प्राणी के स्वभाव को आध्यात्म कहते हैं । प्रत्येक जीव के मस्तिष्क में जो विचार उठते हैं उन्हीं विचारों से उसके प्रत्येक कार्य होते हैं । साधक के लिये उसके प्रातः से लेकर संध्या तक के सभी कार्य ही आध्यात्म हैं । क्योंकि वह पूर्ण रूप से शक्ति के समर्पित है । साधक द्वारा जो भी कार्य होरहे हैं सब भगवती के ही कार्य होरहे हैं वह तो केवल निमित्त मात्र है । ऐसी विचारधारा उसके मस्तिष्क में नित्य ही बढ़ती रहेगी, जिससे उसके द्वारा किये गये सभी कार्य ही उत्तमता से होंगे

और उसका मस्तिष्क भी संतुलित रहेगा। इस प्रकार उसके समस्त कार्य ही आध्यत्मिक कहे जावेंगे।

६७. निष्काम कर्मयोगी में और संन्यासी में क्या अंतर है?

निष्काम कर्म योगी उसे कहते हैं जो निमित्त बनकर कर्म करे यानी कर्म तो वही करेगा परन्तु करेगा निमित्त बनकर। संन्यासी उसे कहते हैं जो समस्त कर्मों को ही प्रकृति का कार्य समझता है। संन्यासी के सभी कार्य उसकी दृष्टि से परमात्म-सत्ता द्वारा होते हैं। वह कर्म करने में अपने को निमित्त भी नहीं मानता है। निमित्त भी वह नहीं बनता। भगवती ही निमित्त बनाने का कार्य करती है।

६८. ब्रह्म और माया एक ही हैं या पृथक् हैं ?

ब्रह्म और माया अगल-अलग होने पर भी एक ही हैं। ब्रह्म के स्वभाव को यानी विचारों को ही माया कहते हैं। ब्रह्म के विचार ब्रह्म से पृथक् रह ही नहीं सकते। जैसे सूर्य ओर सूर्य की किरणें अलग-अलग होने पर भी एक ही हैं। क्योंकि अगर सूर्य न होगा तो किरणें कहां से आवेंगी ? परन्तु, सूर्य का कार्य पृथक् है। इसी प्रकार ब्रह्म और माया दो पृथक् पृथक् नाम होने पर भी एक ही हैं। उनके कार्य केवल भिन्न-भिन्न दिखते हैं।

६९. सच्चिदानन्द के बिना जाने भी सभी लोग सच्चिदानन्द की उपासना कैसे करते हैं ?

सत् माने सदा, चित माने बुद्धि, आनन्द माने सुख। संसार

के सभी लोग सदा रहना चाहते हैं अर्थात् कभी नहीं मरना चाहते। सभी लोग बुद्धिमान् बनना चाहते हैं। हर प्राणी अपने आपको बुद्धिमान समझता है। और सभी लोग सुख में रहना चाहते हैं। इसलिये बिना जाने भी सभी लोग सत्+चित+आनन्द यानी सच्चिदानन्द के उपासक हुए।

७०. शिवरात्रि का क्या महत्व है ?

शिव का अर्थ है शक्ति से कल्याण करने वाला। शिव में से अगर 'श' पर जो मात्रा 'इ' की लगी है हटा दी जाय तो वह शव हो जाएगा। मात्रा के माने माँ शक्ति से है। शरीर से शक्ति निकल जाने पर वह शरीर शव होजाता है। शिवरात्रि चौदस को मनाई जाती है। चौदस का अर्थ है पांचों ज्ञान इन्द्रियाँ व पांचों कर्मेन्द्रियां तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन सभी का समर्पण शक्ति को किया जाय। इसी दृष्टि से चौदस को शिव-रात्रि का पर्व मनाया जाता है। शंकरजी समष्टि रूप से प्राणियों के मस्तिष्क के प्रतीक हैं। प्रत्येक प्राणी के मस्तिष्क में तीन प्रकार के विचार होते हैं— सत्वगुणी, रजोगुणी, और तमोगुणी। ये विचार मस्तिष्क में ही विद्यमान रहते हैं। इन विचारों से ही प्रत्येक जीव के सभी कार्य होते हैं। हमें सब कार्य शंकरजी के रूप में शक्ति के लिये ही करना हैं। हमारे काम शंकरजी के हैं। इसलिये शंकरजी पर बेलपत्री चढ़ाते हैं। क्योंकि बेलपत्री तीनों प्रकार के विचारों की प्रतीक है। शंकरजी पर अर्क के पौधे की बौंड़ी चढ़ाते हैं। उसमें पांच पंखुड़ी होती हैं और उनके अन्दर पांच दाने होते हैं और उनके बीच में एक पीला दाना अलग होता है। ये ग्यारह उठे हुये रूप ग्यारह रुद्रों के प्रतीक हैं। एक आक का फूल चढ़ाकर हम अनुभव

करते हैं कि हमने अपनी दसों इन्द्रिय तथा एक मन यह ग्यारहों रुद्रों को यानी शंकरजी को समर्पित कर दिये हैं ।

७१. प्राय: व्यक्ति समय पर नहीं सम्हल पाता, बाद में सम्हलता है, ऐसा क्यों ?

पूरी तरह से अभ्यास न होने के कारण प्राणी समय पर नहीं सम्हल पाता । प्रत्येक व्यक्ति प्रातः से लेकर संध्या तक के सभी अपने कार्यों में इस बात का ध्यान रखें कि अमुक कार्य मुझसे नहीं होरहा है वरन् शक्ति द्वारा कराया जारहा है । दूसरे के द्वारा किये गये कार्यों को भी शक्ति द्वारा ही कराया हुआ समझा जाय । इस प्रकार का अभ्यास लगातार करते रहने पर जब अभ्यास परिपक्व हो जायगा तब अनुकूल एवं प्रतिकूल स्थिति के आते ही मस्तिष्क शीघ्र संतुलित हो जायगा और व्यक्ति सम्हल जायेगा ।

७२. लोग विषम स्थिति में शक्ति को दोष क्यों देने लगते हैं ?

विषम स्थिति आने पर लोग अज्ञान से शक्ति को दोष देने लगते हैं । वस्तुतः जो प्रतिकूल एवं अनुकूल स्थितियां आती हैं वे उसके जन्म से लेकर अब तक के किये कर्मों का फल है और वे कर्म जिन्हें वह अभी कर रहा है उनका फल उसे आगे मिलेगा । वास्तविकता समझ में आने पर इस प्रकार का भ्रम दूर हो जावेगा । साधक तो कर्म का कर्ता ही नहीं उसे फल से भी कोई मतलब नहीं । वह तो जीव का नाटक कर

रहा है, जिसमें हर्ष, विषाद, ज्ञान और अज्ञान इन सभी का आना जरूरी है। उसकी विषम स्थिति में भी कोई न कोई अच्छाई अवश्य छिपी हुई है जो उसकी समझ से बाहर है। सच्चाई से माँ की शरण में जाने पर भला कोई दुःखी रह सकता है ?

७३. होली का क्या महत्व है ?

सामाजिक दृष्टि से :– अपना देश कृषि प्रधान देश है। होली का समय आने तक प्रायः गेहूँ की फसल पककर तैयार होजाती है। कृषक अपने खेतों पर फसल की रखवाली की दृष्टि से कोरुए बनाते हैं और लकड़ियों से तापते हैं। फसल के कट जाने पर बचे हुए ईंधन को चौराहों पर इकट्ठा करके जलाते हैं। और नये साल की गेहूँ की बालें भूनकर इकट्ठा होकर सभी लोग खाते हैं। दूसरे दिन आग बुझने पर राख को बालक लोग खेतों में फैलाते हैं जिससे वह खाद का काम करे।

स्वास्थ्य की दृष्टि से :– होली के समय ढाक के पेड़ में टेसू फूलने लगते हैं। ये फूल आँखों के लिये विशेष लाभदायक हैं। होली के समय पर प्रायः लोग मन्दिरों में व घरों पर बड़े-बड़े वर्तनों में उन फूलों को भिगोकर उनका रंग उतार लेते हैं और उस रंग से होली खेलते हैं जिससे उस रंग का पानी आँखों में पहुँचकर आँखों को लाभ पहुँचाये। लू से बचने में सहायक हो।

पौराणिक कथाओं की दृष्टि से :– भगवान विष्णु के द्वार–पाल जय और विजय ऋषियों के श्राप से हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष नाम के राक्षस हुए। हिरण्याक्ष को भगवान् विष्णु

ने वाराहावतार धारण करके मार दिया । भाई के वध से संतप्त हिरण्यकश्यप भगवान् विष्णु से बदला लेने के विचार से घोर तपस्या में संलग्न होगया । हिरण्यकश्यप को तपस्या में संलग्न देखकर इन्द्र ने दैत्यों पर चढ़ाई करदी । दैत्यगण अनाथ होने के कारण रसातल में चले गये । इन्द्र ने राजमहल में प्रवेश करके राजरानी कयाधु को बंदी बना लिया । उस समय वह गर्भवती थी । उसे वे अमरावती की ओर ले जारहे थे । मार्ग में देवर्षि नारद से उनकी भेंट होगई नारदजी ने कहा— 'इन्द्र इसे कहां ले जारहे हो ?' इन्द्र ने कहा—'देवर्षि इसके गर्भ में हिरण्यकश्यप का अंश है । उसे मारकर इसे छोड़ देंगे ।' यह सुनकर नारदजी ने कहा—"इस बालक को ऐसी शिक्षा क्यों न दी जाय जो यह बालक खुद ही हिरण्यकश्यप को मारने वाला बने, इसे आप हमारे यहां छोड़ दो ।" इन्द्र कयाधु को छोड़कर अमरावती चले गये । नारदजी कयाधु को अपने आश्रम पर ले आये और उससे बोले—' बेटी, यहां तुम तब तक सुख पूर्वक रहो जब तक तुम्हारा पति तपस्या से लौटकर नहीं आता ।" समय-समय पर नारदजी कयाधु को तत्वज्ञान का उपदेश देते रहते थे जिससे गर्भस्थ बालक के उसी प्रकार के सस्कार बनने लगे । यही बालक जन्म लेकर प्रहलाद हुआ । इससे हमको यह प्रेरणा मिलती है कि गर्भावस्था में बालक जैसे वातावरण में रहेगा उसके उसी प्रकार के सस्कार बनेंगे । इसी प्रकार प्रहलाद की तरह से नवीन संस्कारों से पुराने संस्कार दबाये जासकते हैं । जैसे पहिले उसमें राक्षसी संस्कार होंगे परन्तु नारदजी के आश्रम पर पहुंचने पर उसके वे संस्कार दब गये और तत्वज्ञान सम्बंधी संस्कार बन गये । हिरण्यकश्यप जब ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर वापिस आया तब कयाधु भी नारदजी के आश्रम से राजमहल में आगई । हिरण्यकश्यप ने अपने गुरू पुत्र दण्ड और

अलर्क को बुलाया तथा शिक्षा देने हेतु प्रहलाद को उनके हवाले कर दिया। प्रहलाद गुरू गृह में शिक्षा पाने लगे। उनमें उनके संस्कार के प्रभाव से भगवद्भक्ति बढ़ती जारही थी। वे असुर बालकों को भी भगवद्भक्ति की शिक्षा देते। एक दिन हिरण्यकश्यप ने प्रहलाद को गोद में बिठाकर कहा—"बेटा अपनी पढ़ी हुई अच्छी से अच्छी बात सुनाओ।" तब प्रहलाद ने भगवद्भक्ति की ही प्रशंसा की। यह सुनते ही हिरण्यकश्यप आग बबूला होगया और उसने प्रहलाद को अपनी गोद से उठाकर भूमि पर पटक दिया तथा असुरों को मार डालने की आज्ञा देदी। प्रहलाद का काम तमाम कर देने के लिये असुरों ने विभिन्न उपायों का प्रयोग किया। परन्तु वे सभी निष्फल हो गये। हिरण्यकश्यप की बहिन का नाम होलिका था उसके पास एक ऐसा वस्त्र था जिसे ओढ़कर आग से बचाव होजाता था। उसने अपनी बहिन होलिका से प्रहलाद को साथ बैठाकर आग में जलने की सलाह दी। उसे विवश होकर अपने भाई का कहना मानना पड़ा और वह ईंधन इकट्ठा करवाकर उसमें प्रहलाद को लेकर बैठगई और आग लगवाली। संयोग वश उसके पैर के अंगूठे में अग्नि लगी मालूम हुई अतः उसे घबराहट हुई और घबराहट में वह अपने ओढ़े हुये कपड़े से उघाड़ी होती गई और प्रहलाद उसमें लिपटता गया। परिणाम यह हुआ कि होलिका जल गई और प्रहलाद बच गया। दूसरे दिन सवेरे प्रहलाद उसमें राख उड़ा रहे थे। उन्हें देख उनके साथी भी शामिल होगये।

आध्यात्मिक दृष्टि से :—होली का जो डांड़ा खड़ा किया जाता है वह प्राण का प्रतीक है और उसके चारों ओर जो ईंधन इकट्ठा किया जाता है वह शरीर का प्रतीक है। होली में जब

पंच लोग मिलकर आग लगाते हैं तो डाँड़े को निकाल लेते हैं और उस ईंधन में आग लगा देते हैं । इसका मतलब यह हुआ कि शरीर तो नाशवान है और प्राण अलग से व्याप्त सत्ता है । शरीर के जलने पर पांचों तत्व पांचों तत्वों में मिल जाते हैं और प्राणशक्ति सबमें व्याप्त बनी रहती है । सत्सग का बातावरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है । नारदजी के सद्उपदेशों को श्रवण करने से गर्भ से ही प्रहलाद के आसुरी संस्कार दब गये थे । फलतः जन्म लेते ही प्रहलाद सात्विक संस्कार का आधिक्य लेकर उत्पन्न हुये ।

७४. साधक को दृष्टि से व्यक्ति को भगवान् का पद कब प्राप्त होता है ?

व्यक्ति का अहंकार उन्नति करते-करते जब अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच जाता है तब व्यक्ति का अहंकार ही भगवान की योग्यता प्राप्त कर लेता है । जैसे एक व्यक्ति रामलाल अपने परिवार के लिये दो सौ रुपये के वस्त्र लाकर देदे और स्वयं अपने लिये भले ही बनियान भी न ले तो लोग उस व्यक्ति को परोपकारी नहीं कहेंगे । अब यदि वह व्यक्ति अपनी पारवारिक सीमा को उल्लंघन करके अपने पड़ोसी को, जो बहुत बूढ़ा है और उसमें एक सलूका तक बनवाने की सामर्थ्य नहीं है, आठ-दस रुपये में एक सलूका लाकर देदे तो लोग उससे पूछेंगे—'क्यों, बाबा, आज आपको यह सलूका किसने दिया है ?' तो बाबा यही उत्तर देगा कि 'भाई, रामलाल ने दिया है । भगवान उसका भला करे, खूब फूले फले' इस पर लोग रामलाल को कहेंगे कि रामलाल बहुत परोपकारी है । सत्य ही, जो परोपकार का प्रमाण-पत्र रामलाल को आठ रुपये में

मिल गया वह परिवार पर दो सौ रुपये व्यय करने पर भी नही मिला । अब यदि रामलाल की परोपकारी वृत्ति बढ़ते-बढ़ते जगत के अधिक से अधिक भाग तक पहुँच जावे तो लोग सहज ही कहने लगेंगे कि "सचमुच रामलाल अवतारी पुरुष है, भगवान ने ही जन्म लिया है।" अतः भगवान का पद व्यक्ति के परोपकार की चरम सीमा पर प्राप्त होजाता है ।

७५. शरीर निर्वाह की समस्त क्रियायें जैसे भूख-प्यास लगना, मल-मूत्र विसर्जन होना, अन्न पचना. रक्त बनना आदि स्वाभाविक अनुभव होती है, क्या प्राणशक्ति तथा अहंभाव का इन क्रियाओं में भी योग होता है ?

जैसे घड़ी के भीतर के पुर्जे स्वतः ही चलते दिखते हैं किन्तु घड़ी के पुर्जे की गति चाबी भरने पर निर्भर है और चाबी भरने वाला भी होना चाहिये चाहे उसका काम बहुत ही अल्प समय के लिये क्यों न हो, वैसे ही शरीर निर्वाह की समस्त क्रियाओं की गति प्राण शक्ति पर निर्भर है । साथ ही अहंभाव भी होना चाहिये । प्राण शक्ति के अनन्त कार्यकर्ता हैं । स्वाभाविक कार्य में उसका वही वर्ग होता है जो यंत्रवन् कार्य करता है। चूंकि अहंभाव तथा प्राणशक्ति का योग शरीर निर्वाह की क्रियाओं में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से होता है अतः उनकी क्रिया स्पष्ट मालूम नहीं होती । ऐसा लगता है मानो स्वतंत्र रूप से सभी क्रियायें स्वाभाविक होरही हैं ।

७६. जिन क्रियाओं में अहंभाव अपनी चलाता है और

वह स्वाभाविक क्रियाओं के प्रतिकूल आचरण करता है तो क्या प्राणशक्ति का इन क्रियाओं में भी योग होता है ?

हाँ, प्राणशक्ति तो प्रत्येक क्रिया में अवश्य योग देती है, किन्तु उसका योग केवल इतना ही होता है कि अहंभाव को प्रतिकूल आचरण करने पर सावधान करदे। संस्कारों के वशीभूत जब अहंभाव नहीं मानता तो उसके द्वारा दुखी होने पर पश्चाताप करावे और फिर उसे स्वाभाविक आचरण करने के लिये प्रेरित करे। अहंभाव के कार्य में सीधा हस्तक्षेप करना प्राणशक्ति कभी नहीं चाहती। उसकी सुधार की रीति ऐसी प्रतीत होती है कि वह अहंभाव के प्रतिकूल आचरण करने पर उसे अपमानित कराती और उसे दुखी बनाती है। इस प्रकार प्रथम फिसलने देती है और फिर उसे सम्हालती है। इस प्रणाली के सुधार स्थायीभाव लेता है। हस्तक्षेप करने से अहंभाव अस्थायी रुकता है और समय पाकर पुनः वैसा ही आचरण करने लगता है।

७७. साधना की अवधि में अहंभाव तो प्रत्यक्ष में काम करता अनुभव नही होता और शक्ति का भी कोई रूप नहीं भासता तो फिर क्रियायें आदि कौन करता है ?

शक्ति तो अदृश्य सत्ता है। उससे प्रभावित हुई अनन्त तरंगे कार्य करती हैं। ये तरंगें स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम रूप में होती है। ऐसे ही अहंभाव भी अदृश्य सत्ता है। उसकी

भी स्थूल एवं सूक्ष्म तरंगें होती हैं । स्थूल तरंगें साधारण ज्ञान रखती हैं किन्तु सूक्ष्म तरंगें विवेक से बर्तती हैं । जब अहंभाव की स्थूल तरंगें काम करना बन्द कर देती हैं और सूक्ष्म तरंगों को अपनी तरह से बर्तने की स्वीकृति दे देती हैं तब सूक्ष्म तरंगें जो स्वभाव से ही गलतियों को ठीक करने वाली तथा व्यक्ति को आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करने वाली होती हैं कार्य करने लगती हैं और सहज भाव से ही शक्ति की सूक्ष्म तरंगें उन्हें मार्गदर्शन देने लगती हैं। फलतः साधक का उत्तरोत्तर सर्वांगीण विकास होने लगता है । इनका कार्य तभी होता है जब अहंभाव की स्थूल तरंगें काम करना बंद कर देती हैं और सूक्ष्म तरगों को कार्य करने देती हैं, उनके कार्य में हस्तक्षेप नहीं करतीं ।

७८. नवदुर्गा का पर्व आश्विन मास में होने के उपरांत पुनः चैत्र में क्यों मनाया जाता है ?

सूर्य की गति छै माह उत्तर की ओर और छै माह दक्षिण की ओर रहती है इन्हें उत्तरायण तथा दक्षिणायन कहते हैं । उत्तर की ओर गति प्रगति का सूचक है और दक्षिण की ओर की गति उतार की सूचक है । प्रगति में भी साधक संतुलित मस्तिष्क से काम करता है और उतार में भी वह संतुलित रहता है । उत्तरायण व दक्षिणायन के मध्य में नवदुर्गा पर्व आता है । अतः चढ़ाव के मध्य सम्हलने के लिये पाँचों कर्म-इन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार प्रभुसत्ता के समर्पित होकर वर्ती जावें इस दृष्टि से पर्व मनाये जाते हैं । प्रथम नवदुर्गा का पर्व आश्विन मास का उतार पर सम्हलने के लिये हैं और दूसरा नवदुर्गा का पर्व चैत्र मास का चढ़ाव के समय सम्हलने

के लिये है । यही आध्यात्मिक दृष्टिकोण है ।

७९. नवदुर्गा के चैत्र माह के पर्व के अन्त में रामनवमी (राम जन्म) क्यों मनाते हैं ?

'राम' को गुणातीत कहते हैं यानी वे विचारों से परे हैं। साधक भी नव दिन में गुणातीत होने का यानी साक्षाभाव में आकर सम्हल जाने का अभ्यासी होजाता है । अतः साक्षीभाव के संस्कार पुष्ट होने के लिये रामनवमी को रामजन्मोत्सव साधक समझता है । यही रामनवमी का आध्यात्मिक रहस्य है।

८०. क्या केवल सात्विक वृत्ति को अपनाकर व्यक्ति मुक्ति पा सकता है ?

सात्विक, राजसी, और तामसी तीनों ही वृत्तियां प्राणी को बांधने वाली हैं । सात्विक वृत्ति प्राणी को सत्यता से कर्म करने में बांधती है यानी सुख और ज्ञान से बांधती है, राजसी वृत्ति प्राणी को संकल्पों की पूर्ति करने में लगाये रहती है यानी कर्म से बांधती है और तामसी वृत्ति प्राणी को तमोगुणी कर्मों से बांधती है यानी आलस्य और प्रमाद से बाँधती है। इन तीनों से परे जाने पर ही प्राणी मुक्ति पा सकता है। यानी साधक सात्विकी, राजसी और तामसी तीनों में से किसी भी प्रकार के कर्मों का कर्त्ता न बने तभी कर्तापन से मुक्त होसकता है । कर्तापन से मुक्त होने को ही मुक्ति कहते हैं। साधक सभी कर्म भगवती के लिये ही प्रतिदिन करता है । जब साधक कर्म का कर्ता ही नहीं तो उसे कर्मफल कहां से मिलेगा और कर्म-फल पाने को ही जन्म-मरण होता है । अतः इस प्रकार का

अभ्यास पूर्ण रूप से होने पर ही साधक मुक्ति पासकता है ।

८१. अहंकार के कर्तापन का नाश हो सकता है क्या ?

प्राणी के प्रत्येक कार्य अहंकार द्वारा ही होते हैं । स्वामी भाव, सेवकभाव और साक्षीभाव तीनों ही भावों से प्रभावित होकर प्रत्येक प्राणी का अहंकार कार्य करता है । साक्षीभाव में अहंकार गौण जरूर होजाता है । परन्तु वह रहता तो है ही, उसका नाश नहीं होता । हाँ, साक्षीभाव में वह निर्विकारी अवश्य रहता है । परन्तु हम साक्षीभाव में हमेशा रह नहीं सकते । हमें कर्म तो करने ही पड़ेंगे । इससे यह सिद्ध हुआ कि कर्तापन के अहंकार का कभी नाश नही होता ।

८२. दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति में क्या अंतर है?

सच्चाई और मेहनत से कमाया हुआ धन तथा उसे अपना न समझकर माँ भगवती की देन समझकर उचित ढंग से ही खर्च किया जाय उसे दैविक सम्पत्ति कहते हैं । गलत तरीकों से कमाया हुआ धन व जिसे मनुष्य अपने अहंकार से अपना समझे तथा गलत ढंग से खर्च करे उसे आसुरी सम्पत्ति कहते हैं । आसुरी सम्पत्ति दो प्रकार की होती है । (१) ऊपर से देखने मात्र का व्यवहार लोगों से अच्छा हो और अन्दर से ठग विद्या से उनका धन हड़प लिया जाय । ऊपर से मधुर भावी हों और अन्दर से कपट भरा हो । (२) जिसका ऊपर से दिखावटी व्यवहार भी लोगों के प्रति खराब हो और अन्दरूनी व्यवहार भी कपट से भरा हो । दिल दुखा करके धन हड़प करता हो । यह दूसरे प्रकार की आसुरी सम्पत्ति है ।

८३. प्राणी भगवान से कहे कि "मैं अधम हूँ, पापी हूँ" क्या ऐसा कहना उचित है ?

व्यक्ति अज्ञान से ही ऐसा कहता है कि "मैं पापी हूँ, मैं अधम हूँ" इस प्रकार का कथन भगवान् को ही अधम और पापी बनाता है। क्योंकि भगवान भला किसी को गलत बना सकते हैं ? भगवान ने जो भो वस्तु बनाई है वह अपनी जगह सही है और जो भी कार्य होरहा है प्रत्येक कार्य प्रभुसत्ता का ही होरहा है। जीव तो केवल निमित्त मात्र है। विवेक आने पर प्राणी इस प्रकार का कथन कभी नहीं कह सकता कि "मैं पापी हूँ, अधम हूँ।"

८४. प्राणी सेवकभाव के कार्य उत्तमता से क्यों नहीं कर पाता ?

साधक को अनुभूति करने के उपरान्त हर क्रिया के साथ साथ यह ध्यान रखना पड़ेगा कि मैं तो सेवक हूँ, स्वामी नहीं। मेरा प्रत्येक कार्य स्वामी के लिये होरहा है, मैं तो सिर्फ निमित्त मात्र हूँ। अगर स्वामी के आदेशों का पालन नहीं करूंगा अपनी मनमानी करूंगा तो उसका परिणाम गलत होगा। जैसे हमने खाना खाया और पेट भरने के बाद अन्दर से डकार आई तथा भीतर से भान हुआ कि स्वामी कह रहा है कि 'अब मत खाओ' और उसके बाद भी हम खाना खाते रहेंगे तो हमें बदहजमी आदि की शिकायत होगी, बीमार पड़ जावेंगे, दुःख उठाना पड़ेगा। इसलिये हमें स्वामी के आदेशों को मानना चाहिये तभी सेवकभाव से उत्तमता से कार्य होंगे।

८५. सृष्टि को चलाने वाली प्रमुख सत्ता कौन-कौनसी हैं?

सृष्टि को चलाने वाली तीन प्रमुख सत्ताऐं हैं— (१) परमात्मसत्ता (२) प्रकृति (३) व्यक्ति का अहंकार। पुरुष का अहंकार उसे कहते हैं जो प्राणी के सवेरे से शाम तक के सभी कार्यों में वर्तता है। प्रकृति प्राणशक्ति को कहते हैं जो प्राणी से सेवकभाव, स्वामीभाव व साक्षीभाव में जीव से सभी कार्य कराती है। इस प्रकार से सृष्टि को चलाने वाली ये तीनों सत्ताऐं ही मुख्य हैं।

८६. प्राणी कर्मफल कहां से प्राप्त करता है ?

आकाश में व्याप्त विचारतरंगें प्राणी के मस्तिष्क की विचारतरंगों से टकराती हैं। जिस प्रकार की विचारतरंगें व्यक्ति के मस्तिष्क में होंगी उन्हीं के अनुसार वह कर्म करने लगता है। गर्भ के समय में भी बालक जैसे वातावरण में रहेगा उससे ही वह प्रभावित होगा और जिस संस्कार की ओर उसका आकर्षण होगा बालक उसे ही ग्रहण कर लेगा। समय आने पर उन्हीं के अनुसार वर्तने लगेगा और फल पाने लगेगा। अतः व्यक्ति के कर्मफल संस्कारानुसार आकाश में व्याप्त विचारतरंगों से प्राप्त करता हैं।

८७. हनुमान जयन्ती का क्या महत्व है ?

कर्म करने की दृष्टि से अहंकार को सेवक बतौर रचा गया है। मूलाधार सत्ता से प्रभावित प्रकृति यानी ब्रह्म और माया के प्रतीक राम और सीता के साथ सेवक अहंकार के रूप में हनुमानजी हैं।

शास्त्रों के आधार से हनुमानजी केशरी बानर के पुत्र थे। इनकी माँ का नाम अंजिनी था। अंजिनी को शंकर जैसे राम भक्त बालक की लालसा थी। इसलिये अंजिनी के मस्तिष्क ने आकाश में व्याप्त शंकरजी की विचारतरंगों को अपनी ओर खींच लिया। इस प्रकार से हनुमानजी विचारों से शंकरजी के और शरीर से केशरी के पुत्र माने जाने लगे। अतः वे शंकरजी ही सदृश राम के अनन्य भक्त सिद्ध हुये। राम के अनन्य भक्त बनने की प्रेरणा हमें हनुमान जयन्ती से मिलती है। आध्यात्मिक दृष्टि से प्राणी को हनुमानजी जैसे ही सेवकभाव से कार्य करने का अभ्यास करते रहने को रामभक्त हनुमान का अनुकरण करना है तथा राम का सच्चा सेवक बनना है।

इससे हमें यह जानकारी हुई कि अहंकार ही प्रकृति का सच्चा सेवक हनुमानजी के रूप में है। हनुमान जयन्ती का यही विशेष महत्व है कि हम हनुमानजी सदृश राम यानी ब्रह्म के सच्चे सेवक के रूप में कर्म करें।

८८. साधक जानते हुए भी समय पर क्यों नहीं सम्हल पाता ?

साधक जानता तो है कि सब कार्य प्रकृति कर रही है किन्तु इस भाव का पूरी तरह से अभ्यास नहीं होने की वजह से प्राणी समय पर नहीं सम्हल पाता।

प्रातः से लेकर सायंकाल तक के सभी कार्यों में यदि इस बात का ध्यान रखा जाय कि "कार्य मुझसे नहीं हुआ है, शक्ति द्वारा कराया जारहा है।" ऐसे ही दूसरे के कार्यों को भी शक्ति द्वारा ही कराया हुआ समझा जाय तो इस प्रकार का अभ्यास

लगातार करते रहने पर जब अभ्यास परिपक्व हो जायेगा तब अनुकूल एवं प्रतिकूल स्थिति के आते ही तुरन्त मस्तिष्क संतुलित हो जाएगा और व्यक्ति सम्हल जावेगा ।

८९. साधना को कुछ लोग फिसलना पथ कहते हैं, ऐसा क्यों ?

साधना में प्राणी मानसिक रूप से आत्म-समर्पण करता है किन्तु आंखों से देखी हुई बात में और मन में समझी हुई बात में बहुत अन्तर होता है । मानसिक रूप से अपने शरीर व विचारों को शक्ति को देने की बात प्रत्यक्ष नहीं है । जो साधक अच्छी तरह से बुद्धि से सोच विचार कर अपने शरीर व विचारों को शक्ति के समर्पण करता है और समर्पण करने के बाद शक्ति को स्वामी मानकर प्रत्येक कार्य सेवकभाव से भगवती के लिये ही करता है, वही साधक मजबूती से पैर जमाकर साधना की ओर चल सकता है और जो साधक अच्छी तरह से सोच विचारकर आत्म-समर्पण नहीं कर पाता या जो साधना द्वारा अपनी मांगें पूरी करना चाहता है यानी साधना के माध्यम से उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता है । अथवा सेवकभाव को भूलकर स्वामीभाव से जो कार्य करता है वह साधक मार्ग से फिसल जाता है । इसलिये साधना को प्रायः कुछ लोग फिसलना पथ कह देते हैं ।

९०. अच्छे बुरे कार्यों की जानकारी कैसे होती है ?

प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क के अंदर से जो अच्छे-बुरे ट्रेसेज (संस्कार) भरे पड़े हैं वे ही कार्य करते हैं । हमारा अहंकार दूसरों के कार्यों को अच्छे या बुरे तभी मानेगा जब कि हमारे अन्दर

भी उसी प्रकार के ट्रेसेज होंगे। हमारे अन्दर त्रुटियों के संस्कार होंगे तभी हम दूसरों के दोषों को देख सकते हैं नहीं तो उनकी त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जायेगा। ऐसे ही हमारे अन्दर यदि अच्छे संस्कार होंगे तो हम दूसरों की अच्छाई देख सकते हैं नहीं तो हमारा उन अच्छाइयों की ओर ध्यान ही नहीं जायेगा। सत्य है दूसरों में जैसा गुण व अवगुण हम देखते हैं वैसा गुण व अवगुण हमारे अन्दर भी होना जरूरी है अतः दूसरों में हम जो गुण देख रहे हैं उन्हें हमारे ही अन्दर के गुण दिखा रहे हैं।

९१. साधक की साधना कब सार्थक समझी जाय ?

प्रत्येक अनुकूल एवं प्रतिकूल स्थिति के आते ही साधक यह विचार करके फौरन सम्हल जाय कि "मैं तो निमित्त मात्र हूँ। कार्य तो सभी भगवती के हो रहे हैं। मैं तो इस अभिनय का पात्र हूँ। इसमें आने वाले सुख व दुःख से मुझे प्रभावित नहीं होना चाहिये।" तभी साधक की साधना सार्थक होगी। क्यों कि ऐसा स्मरण ही उसे अनुकूल एवं प्रतिकूल स्थिति से विचलित न होने देगा। उस का मस्तिष्क संतुलित हो जायगा। अतएव जो साधक अनुकूल एवं प्रतिकूल स्थिति के आते ही अति शीघ्र सम्हल जाय तभी यह समझना चाहिये कि इस साधक की साधना सार्थक है।

९२. साधना में वेग का कम या ज्यादा होना क्या महत्व रखता है ?

जो साधक इस प्रकार के प्रश्न करता है कि मुझे साधना में वेग अधिक नहीं आता है या क्रियायें नहीं होती है वह अभी

अपने को पूर्ण रूप से समर्पण नहीं कर पाया है। वह अभी अपनी अपनी चलाता है। साधना में इस तरह के विचार रखने से वह साधना में होने वाली क्रियाओं के होने में रुकावट करता है। जब साधक पूर्ण रूप से माँ की शरण में पहुँच गया तब फिर उसे तो साधना के समय यही ध्यान रखना है कि मुझे तो कुछ भी नहीं करना है चाहे वेग अधिक आवे या कम आवे क्रियायें हों अथवा नहीं, माँ की मर्जी चाहे उसे जिस तरह से रखे उसे इन बातों से कोई मतलब नहीं।" छोटा बालक जब रोता है तो मां कभी उसे जोर जोर से हिलाने झुलाने लगती है और कभी वैसे ही गोदी में चिपकाये रखती है। क्या बालक मां से यह कहता कि 'तुम मुझे इस प्रकार क्यों रखती हो" यह तो स्वयं मां की ही मर्जी है। बालक को चाहे जैसे रखे। इसी प्रकार पूर्ण रूप से शरण में हुये साधक को मां चाहे जिस तरह से रखे, शरीर की गड़बड़ी या टूट फूट को सही करने के लिये अधिक क्रियायें हों अधिक वेगआवे या अन्दरूनी वेग ही आवे जो बहुत धीमी गति से हो जो हमारी समझ से बाहर हो। वस्तुत: साधक को हमेशा साधना में यही ध्यान करके बैठना है कि "मुझे कुछ भी नहीं करना" अत: साधना में कम अथवा ज्यादा वेग का आना कोई महत्व नहीं रखता।

९३. सूर्य ग्रहण का क्या महत्व है ?

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है और चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है। जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी दोनों के बीच में आजाता है तब सूर्य पर छाया पड़ी मालूम होती है उसी को लोग सूर्य ग्रहण कहते हैं। जब तक चन्द्रमा उस बीच में से निकल नहीं जाता तब तक के लिये यह छाया बनी रहती है।

कुछ लोग सूर्य ग्रहण के समय भोजन करने को दोष मानते हैं दोष यही है कि स्वास्थ्य की दृष्टि से इस समय भोजन करना ठीक नहीं है क्योंकि यह विदित है ही कि सूर्य की किरणें विषाक्त कीटाणुओं को नाश करती रहती हैं यदि किरणें न फैलें तो विषाक्त कीटाणु फैलते रहेंगे और भोजन की सामग्री विषाक्त हो जावेगी । इसी दृष्टि से कई मतों में सूर्य छिपने के पहिले ही भोजन कर लेना ठीक मानते हैं । सूर्य छिपने के बाद भोजन करना शरीर को हानिकारक है । चूंकि सूर्य के ऊपर छाया पड़ना भी सूर्य छिपने के समान है अतः कई लोग इस समय भोजन नहीं करते । सूर्य ग्रहण के पर्व का कुरुक्षेत्र में मेला लगता है जहां हजारों की संख्या में विदेशी लोग भी इकट्ठे होते हैं और सूर्य का फोटो भी लेते हैं खग्रास ग्रहण के समय पर ही सूर्य का ठीक फोटो लिया जासकता है वैसे नहीं । आध्यात्मिक दृष्टि से सूर्य कहते हैं आत्मा को और उस पर ग्रहण आना माया का आवरण आजाना है । माया रूपी अज्ञान दूर होते ही आत्मा पूर्ववत दिखने लगती है। अज्ञान से आत्मा को विकारी कहते हैं । वस्तुतः आत्मा सदा निर्विकारी है ।

६४. परमात्म-सत्ता और प्रकृति की जानकारी के बाद क्या और भी कोई आध्यात्मिक तत्व शेष रहता है?

परमात्म-सत्ता निर्विकारी सत्ता है । परमात्म सत्ता के प्रभाव से प्रकृति सभी कार्य करती है और प्रकृति से प्रभावित है प्राणी के 'मैंपन' का अहंकार यानी बाह्य विचार तरंगों से प्रभावित व्यक्ति का मस्तिष्क इन्द्रियों से काम कराता है अर्थात् आकाश में व्याप्त विचार तरंगें प्राणी के मस्तिष्क की विचार तरंगों को प्रभावित करती हैं और इन्द्रियां तदनुसार वर्तती हैं । अहंकार

तत्व के अतिरिक्त जो तत्व रहते हैं उनसे कोई विशेष प्रयोजन नहीं ।

९५. व्यक्ति शान्त क्यों नही रह पाता ?

दूसरे की चीज को अपनी समझने के कारण व्यक्ति शान्त नहीं रह पाता । "व्यक्ति समझता है कि शरीर मेरा है" अगर उससे यह पूछा जाय कि क्या उसने शरीर के किसी अंग को बनाया है, हाथ बनाये हैं, पैर बनाये हैं, आँखें बनाई हैं, कान बनाये हैं, नाड़ी उसके कहने से चलती है, खाना उसके कहने से पचता है, रक्त का संचार उसके कहने से होता है, सांस उसके कहने से चलती है तो इन सभी का उत्तर यही मिलेगा कि 'नहीं' तो फिर हाथ पैर आदि किसने बनाये ? इन्हें बनाने वाली व इनसे काम लेने वाली सत्ता अवश्य होना चाहिये । उसी सत्ता का यह शरीर है । सत्ता उसके अन्दर विद्यमान है । वह इस शरीर की मालिक है । उस सत्ता के हम सेवक हैं । प्रत्येक कार्य उसी सत्ता के प्रभाव से होता है । व्यक्ति तो सिर्फ निमित्त मात्र है । जब तक व्यक्ति इस प्रकार का अभ्यास परिपक्व नहीं कर लेता तब तक उसका शान्त रहना महान कठिन है ।

उदाहरण के लिये :- हम किसी की घड़ी को लेकर अपनी बनाना चाहते हैं यदि जिसकी घड़ी है, वह स्वयं उपस्थित है । और उसे पूर्ण जानकारी भी हो और वह हमसे बलवान् भी हो तो जब तक हम उसकी घड़ी को वापिस न कर देंगे हमें शान्ति नहीं मिल सकती । इसी प्रकार से यह शरीर शक्ति का है जिसे हम अपना समझे बैठे हैं । जब तक हम यह शरीर उसको समर्पण नहीं करेंगे या शरीर को शक्ति का समझकर ही

सेवक भाव से निमित्त बनकर कर्म नहीं करेंगे तब तक हम भी शान्ति अनुभव नहीं कर सकते ।

९६. साधना लेने के कुछ समय बाद किसी-किसी साधक में शिथिलता क्यों आजाती है ?

जो साधक सच्चाई से आत्म समर्पण नहीं करता और जो साधक अपने मन में फल की इच्छा रूपी चोर छिपाये हुये है, ऐसा साधक फल की इच्छा पूरी न होने पर साधना में बैठना बन्द कर देता है । क्योंकि वह तो फल की इच्छा से साधक बना था । फल उसे मिला नहीं तब साधना में शिथिल हो जाता है । वस्तुतः फल मिलना है प्रारब्ध से । फल नहीं मिलने से उसने साधना को ठीक नहीं समझा और साधना में बैठना बन्द कर दिया । सचमुच वही साधक नियमित साधना में बैठ सकता है जो अपनी बुद्धि से अच्छी तरह सोच विचार कर अपने शरीर व विचारों को शक्ति के समर्पण किये रहता है फल की इच्छा नहीं रखता तथा शक्ति को स्वामी मानकर प्रत्येक कार्य को सेवक भाव से मां भगवती के लिये ही करता है । इसके विपरीत आचरण करने वाला साधक प्रायः साधना लेने के कुछ समय बाद ही साधना के प्रति शिथिल होजाता है ।

९७. गुरुदेव के समक्ष व अलग से साधना में बैठने पर साधना की क्रियाओं में अन्तर क्यों समझा जाता है?

गुरुदेव के समक्ष में साधना का वातावरण फैला हुआ होता है जिसका प्रभाव साधक पर पड़ता है । घर पर या अन्य जगह में इस प्रकार का वातावरण साधक को प्राप्त नहीं होता

इसलिये साधक को घर पर व गुरूजी के समक्ष साधना में बैठने में अन्तर अनुभव होता है । जब वह तथा उसके घर के अन्य सदस्य नियमित साधना में एक ही कक्ष में बैठते रहेंगे तो घर में भी साधना का वातावरण व्याप्त हो जायेगा । हां, यह ठीक है कि गुरूजी के समक्ष साधना में बैठने से साधक को साधना में होने वाली शँकाओं का गुरूजी द्वारा तत्काल समाधान हो जाता है । इसलिये लोगों का प्रायः यह मत है कि साधना में गुरूजी के यहां बैठना अपेक्षाकृत घर पर बैठने के अधिक हितकर एवं सुखद अनुभव होता है ।

९८. साधक को अपने दैनिक कार्यों में किस भाव में रहकर काम करना चाहिये ?

साधक को अपने दैनिक सभी कार्य स्वामीभाव व सेवक भाव से करने हैं । स्वामीभाव में तो उसे अन्दर से कार्य करने का आदेश मिलेगा और सेवकभाव से वह उस कार्य को करेगा । औरों से कहते समय व्यवहार में तो यही आवेगा "कि मैं कर रहा हूँ" परन्तु मन में यही भाव होगा कि 'मैं तो निमित्त बनकर कार्य कर रहा हूँ'। साधक को अन्दर से जो भी आदेश मिले उसका पालन करना चाहिये और प्रत्येक कार्य को प्रकृति द्वारा कराया हुआ ही समझना चाहिये । हां, ऊपर से लोगों को ऐसा कहने की आवयश्कता नहीं ।

९९. क्या पूर्व अर्जित अनुचित संस्कारों को बदला जा सकता है अथवा मैं संकल्पों से अलग रह सकता हूँ?

जो भी उचित, अनुचित संस्कार सुनकर या पढ़कर हमारे मस्तिष्क में प्रविष्ट हो गये हैं. हम उन्हें बदल नहीं

सकते । हां, यदि उचित संस्कार प्रचुर मात्रा में हमारे मस्तिष्क में समा जाते हैं और वे भली प्रकार मस्तिष्क में जम जाते हैं तो वे अनुचित संस्कारों को प्रभावहीन कर देंगे, किन्तु उन्हें हम मिटा नहीं सकते । अनुचित संस्कारों के स्मृति चिन्ह हमारे मस्तिष्क में रहेंगे अवश्य । प्रत्येक साधक के मस्तिष्क में जन्म से ही अनन्त स्मृतिचिन्ह भरे रहते हैं और वे समय समय पर उभरते रहते हैं । प्रत्येक साधक के मस्तिष्क में अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के संस्कार होते हैं, परन्तु अच्छे संस्कार अधिक मात्रा में होने पर वे बुरे संस्कारों को निर्बल बना देते हैं जिससे साधक उनमें बहता नहीं है, सम्हल जाता है । अस्तु, संकल्पों से व्यक्ति पृथक नहीं रह सकता । चूंकि मुझमें वस्तुतः एक अश परमात्म-सत्ता का, एक अंश प्रकृति का, एक अंश समष्टि संकल्पों का और एक अंश व्यक्तिगत संकल्पों का है, अतः मैं संकल्पों से कैसे अलग रह सकता हूँ ? वे तो अपना अस्तित्व स्वाभाविक रूप से मुझ में रखते हैं । हाँ, मैं केवल बुद्धि से ही संकल्पों से अलग हो सकता हूँ । क्योंकि जब मैं कहता हूँ "यह मेरा संकल्प है" तब मुझे संकल्प से अलग होना चाहिये और मेरे संकल्पों को मुझसे अलग । मैं पृथक हूँ और मेरी वस्तु पृथक है, अस्तु शरीरधारी में संकल्पों का होना अनिवार्य है ।

१००. हठ योग में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों को गुरू कृपा से अनुभूति की साधना कठिन क्यों दिखती है?

हठ योग के अन्दर 'मैंपन' के संस्कार इतने प्रबल होते हैं कि उन्हें साक्षीभाव में रहकर 'मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ' के संस्कार बनाने बहुत कठिन जान पड़ते हैं जबकि वास्तव में वे हैं बहुत सरल ।

हठयोगी को अपने मार्गदर्शक से इस प्रकार की शिक्षा मिलती है कि "प्राणायाम करो, आसन लगाओ, जप करो इत्यादि यह करो वह करो।" इस प्रकार का अहंकार से प्रभावित अनन्त स्मृतिचिन्ह उसके मस्तिष्क में प्रबल रहते हैं। इन सबसे शान्ति की प्राप्ति न मिलने पर जब कोई साधक ऐसे महापुरुष से सम्पर्क स्थापित करना चाहता है जो उसे साक्षीभाव में रहकर "मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ" के संस्कार डालने की प्रेरणा दे तब साधक उस महापुरुष के अनुसार आचरण करता है। जैसे ही वह वैसा करता है कि उसके पूर्व के अर्जित कर्तापन के प्रबल संस्कार सहज ही उभर आते हैं जिससे साक्षीभाव में रहकर 'मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ' के संस्कार बनने में कठिनाई आती है।

अस्तु, हठयोग में विश्वास रखने वाले साधक के मस्तिष्क में जब यह भाव पूर्ण रूप से जाग्रत हो जायेगा कि वास्तव में 'मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ,' सभी कार्य परमात्मसत्ता के प्रभाव से प्रकृति द्वारा होरहे हैं–"अन्न पच रहा है, सांस चल रही है, रक्त का संचार हो रहा है इत्यादि सभी कार्य प्रकृति द्वारा ही हो रहे हैं, मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ, मुझे अपने प्रत्येक कार्य को निमित्त बनकर करना है"। तभी वह वास्तविकता की ओर अग्रसर हो सकता है। साक्षीभाव के संस्कार उसके अहंकार के संस्कारों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। इसीलिये उसे कठिन दिखाई देते हैं।

महात्मा श्री नारायणदास जी
प्रणीत ग्रन्थ

		मूल्य
१	गीतामृत (जीवन यापन की कला) अध्याय १ से १८	१५=००
२	रामचरित मानस के दस प्रसंग	२=००
३	रामचरित मानस के दस रहस्य	२=७५
४	साधक शंका समाधान	२=००
५	साधक प्रश्नोत्तर शतक	२=५०
६	साधक प्रश्नोत्तर द्वितीय शतक	३=००
७	साधक बिचार प्रगति	२=००
८	साधक साधना (भजन)	१=२५
९	जैसे मैंने सीखा अनुभूति से पूर्व की मेरी जीवन घटनायें	२=५०
१०	कुंडलिनी (व्यक्तिगत अनुभव) सजिल्द	१०=००
११	आत्म-बोध	२=००
१२	Realisation of the Self (English)	१=५०
१३	साधना	२=००
१४	स्वशक्ति साधना का संक्षिप्त परिचय	०=५०
१५	दिव्य शक्ति बोध (भजन)	०=६५
१६	वचनामृत	२=००
१७	बुद्धि विकास	२=५०
१८	बापू के एकादश	२=००
१९	ईशावास्योपनिषद (व्यक्तिगत दृष्टिकोण)	४=५०
२०	मानव विकास की पूर्णता	२=००
२१	कुंडलिनी का जीवन में उपयोग (सजिल्द)	७=००
२२	रामचरित मानस में कुंडलिनी (व्यक्तिगत अनुभव)	४=००
२३	मेंपन का विवेचन (व्यक्तिगत अनुभव)	५=००

प्रकाशक— **नारायण साहित्य प्रकाशन**
भारतीय विद्यालय, शिवपुरी (म० प्र०)

मुद्रक:— दुर्गा आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, शिवपुरी । फोन २४२